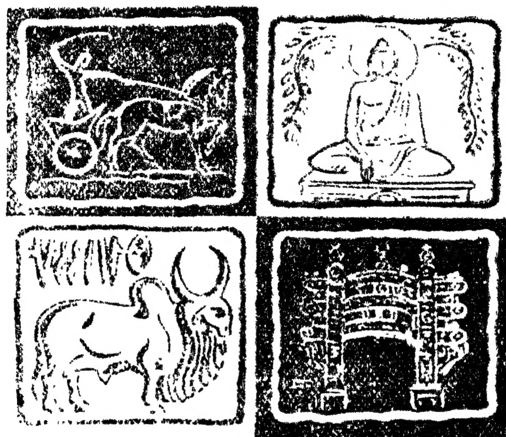
स्वदेश-परिचय-माला

भारतीय साहित्यों की कहानी



लेखक

भगवतशरण उपाध्याय



राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६



द्वितीयावृत्ति
फरवरी, १९५७

मूल्य
सवा रुपया (१.२५ नये पैसे)

मुद्रक
युगान्तर प्रेस,
डफ़रिन पुल, दिल्ली

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली ६

सूची

भारतीय साहित्यों की कहानी

भारत में अनेक लोग हैं जो अनेक भाषाएँ बोलते हैं। प्रधान भाषाएँ तो दस-बारह ही हैं, पर बोलियाँ सैकड़ों हैं। यहाँ हम केवल तेरह भाषाओं के साहित्य की कहानी कहेंगे। इनमें से नौ उत्तर-पूर्व की भाषाएँ हैं, चार दक्षिण की। उत्तर की नौ भाषाएँ हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, कश्मीरी, पंजाबी, उड़िया, असमी और उर्दू हैं। और दक्षिण की चार तमिल, तेलुगू, कन्नड और मलयालम् हैं। दक्षिण की भाषाएँ मूलरूप में द्राविड़ से निकली हैं पर उनमें संस्कृत के शब्द काफ़ी मिले हुए हैं। उत्तर की भाषाएँ संस्कृत और पुरानी जन-बोलियों यानी प्राकृतों से निकली हैं और एक दूसरे के बहुत निकट हैं। इन तेरहों भाषाओं में सैकड़ों वर्षों से साहित्य लिखा जाता रहा है। एक से एक पण्डित, एक से एक गायक उनमें पैदा हुए और उन्होंने बोली को साहित्य के योग्य बनाया। आज हम उनके साहित्य को बार-बार मथकर सुख और आनन्द लाभ करते हैं; आज सैकड़ों साल बाद भी उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। आगे उन्हीं तेरहों साहित्यों की कहानी दी जाती है।

१

हिन्दी

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसका विस्तार बड़ा है। करीब १७ करोड़ आदमी उसे इस देश में बोलते हैं। पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, मध्य प्रदेश का एक बड़ा भाग, मध्य भारत और बिहार के रहने वाले हिन्दी या उससे मिलती जन-बोलियाँ बोलते हैं।

यह भूखण्ड इतना बड़ा है कि इसमें एक भाषा का निभ सकना कठिन था, इसलिये थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बोली बदलती गई और इस प्रकार अनेक बोलियाँ बोली जाने लगीं। इनमें से प्रधान बोलियों में साहित्य भी काफी तैयार हुए जिनको हिन्दी ने अपने साये में लिया और जो हिन्दी के ही अंग-प्रत्यंग माने जाते हैं।

इस प्रकार जिन बोलियों में अच्छा साहित्य प्रस्तुत हुआ, उनमें प्रधान हैं—राजस्थानी, ब्रजभाषा, अवधी, भोज-पुरी और मैथिली। जिसे आज हम खड़ी बोली कहते हैं,

वह भी पहले की दिल्ली के आस-पास की जन-बोली ही है। पर जैसे किसी ज़माने में ब्रजभाषा का बंगाल तक इतना बोलबाला था कि अनेक बंगाली कवियों ने उसमें कविता की, उसी प्रकार आज दिल्लीवर्ती उस खड़ी बोली का भी बोलबाला है और आज की सभी हिन्दी-बोलियाँ और उनके साहित्य उसीके अन्तर्गत माने जाते हैं।

इन बोलियों का आरम्भ प्राचीन जन-बोलियों या प्राकृतों से हुआ। प्राकृत का मतलब है वह बोली, जो सहज रूप से अनायास आदमी बोलता हो। उन्हीं प्राकृतों ने समय आने पर साहित्यिक रूप धारण किया। उन्हींका एक रूप अपभ्रंश कहलाया। जब साहित्य का रूप धारण की हुई प्राकृतों में जन-बोली के शब्द मिलाकर लिखते थे, तब उसे अपभ्रंश कहते थे। यही अपभ्रंश एक काल प्राकृतों की ही भाँति साहित्य की भाषा बन गई। हिन्दी का उदय बस वहीं से हुआ।

अपभ्रंश में लिखी अनेक कवियों की रचनाओं में ऐसी पंक्तियाँ हैं जो हिन्दी में दोहे कहलाईं। इस रूप में हिन्दी का आरम्भ शायद दसवीं सदी से और पहले हो गया था। हिन्दी के इतिहास को हम साधारण तौर पर तीन भागों में बांट सकते हैं—प्राचीन काल, मध्य काल और वर्त्तमान काल। प्राचीन काल आठवीं सदी से तेरहवीं सदी तक है,

मध्य काल उसके बाद उन्नीसवीं सदी तक, और वर्त्तमान काल उसके बाद से आज तक।

१. प्राचीन काल

प्राचीन काल ईसा की आठवीं सदी से भी पहले से शायद शुरू होता है, जब वज्रयानी सिद्धों ने अपना ज्ञान पदों और दोहों में लिखना शुरू किया। कन्हपा, सरहपा आदि उसी परम्परा के सिद्ध हैं। दसवीं-ग्यारहवीं सदी में नाथों का सम्प्रदाय खड़ा हुआ, जिसमें प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ हुए। सिद्धों की भाषा अधिकतर जटिल है और रहस्य के रूप में अपना अर्थ बाँध रखती है।

प्राचीन काल का पिछला युग 'वीर-गाथा' काल भी कहलाता है। यह युग ग्यारहवीं-बारहवीं सदी का है। इसी काल प्रसिद्ध 'पृथ्वीराज रासो' लिखा गया। उससे भी पहले पृथ्वीराज के दादा बीसलदेव का चरित उसी वीर-गाथा शैली में नरपति नल्ह ने गाया था। बीसलदेव अजमेर का चौहान राजा था। पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर का राजा था और उसके दरबारी कवि चन्द वरदायी और उसके बेटे जल्हण ने 'पृथ्वीराजरासो' लिखा। परन्तु जो रासो आज हमें मिलता है, वह उतना पुराना नहीं है और आज से केवल चार सौ बरस पुराना जान पड़ता है। उस काल का सबसे प्रबल राज दरबार कन्नौज के गहड़वाल राजा जयचंद

का था। उसके दरबार के मधुहर और भट्टकेदार भाषा के कवि थे। परन्तु उनका लिखा आज कुछ भी प्राप्त नहीं है। चन्देल राजाओं के महोबा के दरबार में जगनिक नाम के कवि के होने की बात कही जाती है। उसने भी शायद 'आल्हाखण्ड' के नाम से जन-बोली में उस काल की वीर-गाथा गाई। पर आज जो आल्हाखण्ड मिलता है वह तब का नहीं माना जा सकता। इस वीर-गाथा साहित्य को, जो अधिकतर वीरों के यश को अमर करने के लिये लिखा गया था, 'चारण काव्य' भी कहते हैं क्योंकि उसको दरबारों में या लड़ाई के मैदान में या लोगों की बैठक में चारण या भाँड लोग गाया करते थे।

२. मध्य काल

मध्य काल का आरम्भ भक्ति-सम्प्रदाय के प्रचार के साथ हुआ। दक्षिण में रामानुज, मध्व, निम्बार्क आदि ने जिस भक्त-परम्परा को साधा, वह उत्तर में भी रामानन्द और चैतन्य महाप्रभु के प्रचार से फैली। बंगाल में जयदेव ने राधाकृष्ण का विलास संस्कृत काव्य 'गीत-गोविन्द' में गाया। मैथिल-कोकिल विद्यापति ने अपनी बोली में उन्हीं-के विलास को मुखरित किया।

मध्य काल की खड़ी बोली का आरम्भ मलिक खुसरो ने किया। उसकी पहेलियाँ बड़ी साफ-सुथरी हैं और उनमें

फ़ारसी और हिन्दी मिली भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है। उसने भारतीय संगीत का भी बड़ा विकास किया। कहते हैं कि सितार और तबला उसीके बनाये हुए हैं।

मीरा ने भी अपने पदों में भक्ति की अद्भुत धारा बहाई। राजा की लड़की थी मीरा, पर कुल की मर्यादा से अधिक रस उसे गिरधर से प्रेम के निर्वाह में मिला। उसके पद ब्रजभाषा, राजस्थानी और गुजराती तीनों भाषाओं में अपने करके माने गये। सूरदास भी उसी भक्त-परम्परा में हुए। उनके पद मिठास और कविता की सुघराई में अपना सानी नहीं रखते। ब्रजभाषा में उनके पदों से बढ़कर दूसरा कुछ नहीं। कृष्ण के बालपन का जो रूप सूर ने खींचा है वह अन्यत्र नहीं मिलता। रामानन्दी परम्परा के सबसे महान साधु गोसाईं तुलसीदास हुए। समाज को शास्त्र की मर्यादा से गिराने वाले औघड़ों और कापालिकों के जवाब में उन्होंने अपना प्रबन्ध-काव्य 'रामचरितमानस' लिखा, जिसकी गिनती संसार के बारह सर्वोत्तम काव्यों में की जाती है। समाज में एक या दूसरे के प्रति कर्त्तव्य, पारिवारिक सम्बन्ध—उसमें सभी कुछ उतर आया। और जन-जन की बोली में जन-जन को छूकर उस काव्य ने सुरसरि की धारा की भाँति सबको पवित्र कर दिया।

भक्तों की एक सन्त-परम्परा भी थी जो पहले से चली

आती दूर के सिद्ध गुरुओं से भी कुछ अंश में जुड़ी थी। उसपर सूफ़ी धर्म का भी प्रभाव पड़ा, जिसने प्रेम और एकता का उपदेश किया। कबीर उसी परम्परा के सन्त थे, जिन्होंने हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मसजिद आदि की दुविधा को बड़े साहस के साथ ललकारा। जायसी ने भी पद्मावत उसी परम्परा में लिखा, जिसमें सूफ़ी और उपनिषद् के विचारों को पद्मिनी के रूपक में रखा गया। दादू, मलूक-दास आदि भी सन्त कवि ही थे। इनके प्रचार से भेद-भाव की समाज में कमी हुई।

मध्य काल का पिछला युग रीति-काल या शृंगार-काल कहलाता है। अब अधिकतर कवि जयपुर, ओड़छा आदि के दरबारों में रहने लगे थे। इस काल नखशिख सौन्दर्य का वर्णन, नायिका-भेद और अलंकार कवियों के आकर्षण बने और उन्होंने कहीं व्याख्या के रूप में, कहीं दृष्टान्त के रूप में और कहीं मूलरूप में उस सम्बन्ध में कविता रची। ओड़छा के कवि केशवदास ने इसी रीति-परम्परा में अपनी 'कविप्रिया' लिखी। जयपुर के कवि बिहारी ने तभी कुछ ही काल बाद अपनी 'सतसई' लिखी। देव, सेनापति, घना-नन्द और पद्माकर भी इसी परम्परा के थे। और इसी परम्परा के मतिराम और भूषण भी थे। पर भूषण ने वीर-रस में हिन्दू राष्ट्रीयता का स्वर गाया।

३. वर्त्तमान काल

हिन्दी साहित्य का वर्त्तमान काल उन्नीसवीं सदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से शुरू होता है। अब तक का साहित्य अधिकतर पद्य साहित्य था, पर अब से गद्य साहित्य भी शुरू हुआ। भारतेन्दु स्वयं कवि और नाटककार थे। 'भारत-दुर्दशा' आदि अनेक नाटक लिखकर बड़ी हिम्मत के साथ साहित्य में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता को जन्म दिया। उनके साथ अनेक दूसरे साहित्यकार भी थे, जिन्होंने गद्य-पद्य दोनों में लिखा।

बीसवीं सदी के आरम्भ से ही राष्ट्रीयता का नारा बुलन्द हो चला था और राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलन ने उसमें अपना योग दिया। 'हरिऔध' ने संस्कृत छन्दों का अपने महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' में प्रयोग किया। मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीयता की आवाज अपनी 'भारत-भारती' में ऊँची की और श्रीधर पाठक ने कविता को एक नई दिशा दी। यह युग 'द्विवेदी-युग' कहलाया क्योंकि महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन द्वारा अनेक नये कवियों को खोज निकाला और स्वयं आलोचना और निबन्ध के शरीर खड़े किये।

परन्तु सुन्दर पुष्ट गद्य का रूप रामचन्द्र शुक्ल ने

निखारकर रखा। निबन्ध और आलोचना चोटी को छू चले।

अगला कदम साहित्य में छायावादी कवियों ने उठाया, जिसके चार मजबूत पाये—जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा बने। इस शैली में अपनी अनुभूति अधिक बोलती थी, और उस-पर बंगला और अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों का भी प्रभाव था। प्रकृति का वर्णन, नये छन्दों का प्रयोग, मधुर सुन्दर परन्तु रहस्यमयी वाणी का भी उपयोग उसमें खूब हुआ। अकर्मण्य भारत का वह शान्त युग था।

प्रबल वेग से प्रगतिशीलता की धारा नरेन्द्र और शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने बहाई। इसी बीच हरिवंशराय 'बच्चन' की रूमानी कविता भी अपने डग भर चली, और रामधारी सिंह 'दिनकर' की ओजमयी पद्य-रचना भी।

इस बीच नाटक और निबन्ध, कहानी और उपन्यास भी खूब लिखे गये, कहानी और उपन्यास का सेहरा प्रेमचन्द के सिर बँधा, जिन्होंने देश की साध और गाँव का जीवन एक साथ साहित्य में रखा। आलोचना-साहित्य भी बड़ी मात्रा में सामने आया। हिन्दी के देश की राष्ट्रभाषा बन जाने के बाद उसकी जिम्मेदारी बढ़ गई है, पर आशा है कि अन्य राज्यों के हिन्दी-भिन्न भाषा-भाषी भी हिन्दी का कलेवर सँवारने में सहायक होंगे।

२
बंगला

बंगला स्वतन्त्र भाषा के रूप में करीब हज़ार वर्ष से चलती श्रा रही है पर उसके साहित्य का विशेष उदय इधर हाल के सौ सालों में हुश्रा है। प्राचीनतम बंगला के चरिया पद ४७ की संख्या में बहुत काल से जाने हुए हैं। उनके श्रतिरिक्त श्रौर भी पद बनते रहे हैं, जिन्होंने बंगाल के जीवन को खोलकर रखा है।

इस्लाम के हमले ने बंगाल की संस्कृति पर बड़ा प्रभाव डाला फिर भी बंगला की गति-विधि साहित्य में रुक न सकी। मयूर भट्ट ने लाउसेन की कथा लिखी, काड़ा हरिदत्त ने बिहुला श्रौर लखिन्दर की। इस्लाम के श्राने के बाद पहला प्रसिद्ध पदकार बंगला में चण्डीदास हुश्रा, जिसने राधा-कृष्ण के प्रेम पर श्रद्भुत् मधुर गान किये। चण्डीदास के नाम से करीब १२०० पद विख्यात हैं, यद्यपि इनमें से थोड़े ही चण्डीदास के बनाये हुए हैं। उस गायक की लोक-प्रियता ने श्रनेकों के पद उसके नाम के साथ जोड़ दिये।

दीन चण्डीदास भी उसी परम्परा का कवि है और उसका 'कृष्ण-कीर्तन' मध्य कालीन बंगला का प्रसिद्ध काव्य है ।

चौदहवीं सदी के शुरू में होने वाले कृत्तिबास ओझा ने रामायण की कथा लेकर काव्य लिखा, जिससे उसने काफी ख्याति पाई । पन्द्रहवीं सदी के चौथे चरण में मालाधर वसु ने गुणराज खाँ के नाम से कृष्ण की कथाएँ काव्य-बद्ध कीं जो बड़ी लोकप्रिय हुईं । उन्हीं दिनों विजयगुप्त और विप्रदास ने बिहुला और लखिन्दर की प्रसिद्ध कविताएँ लिखीं ।

पन्द्रहवीं सदी बंगला साहित्य में विशेष स्थान रखती है । उसी सदी में चैतन्य ने अपना भक्ति-रस बहाया और बंगाल के मुसलमान सुल्तान बंगला के प्रति आकृष्ट हुए । रामायण-महाभारत और पुराणों की अनेक कथाएँ तब से उन्नीसवीं सदी तक लगातार काव्यबद्ध होती गईं ।

पन्द्रहवीं सदी में ही विद्यापति के मधुर पद बंगाल के नये कवियों के गायन में बसे और बंगला में इस प्रकार एक नई गीति काव्य की धारा बही । ब्रजभाषा भी कुछ अंशों में ब्रज-बुली के नाम से तभी बंगाल में प्रचलित हुई और उसने बंगला के कवियों पर अपना प्रभाव डाला ।

सोलहवीं सदी में जीवन-चरितों की जैसे बाढ़ आ गई और चैतन्य-भागवत, चैतन्य-मंगल, चैतन्य-चरणामृत आदि

के नाम से चैतन्य का चरित लिखा गया। इसी प्रकार अनेक वैष्णव संतों की कथाएँ भी सत्रहवीं-अठारहवीं सदी तक लिखी जाती रहीं।

सत्रहवीं सदी में अनेक मुसलमान कवियों ने भी बंगला का साहित्य सँवारा। फ़ारसी और अरबी की परम्पराएँ बंगला में भी आईं और सूफ़ी मत अनेक प्रकार और रूप से साहित्य में प्रविष्ट हुआ। दौलत क़ाज़ी, कुरैशी, मुहम्मद खाँ, अब्दुल नबी, आलावोल आदि उस काल के प्रसिद्ध मुसलमान बंगाली कवि थे। इस दिशा में मुसलमान कवियों का दृष्टि-कोण धार्मिक होता हुआ भी काफी रूमानी था, जिससे उनका काव्य विशेष आकर्षक हुआ।

सोलहवीं सदी के बंगाल के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कवि-कंकण मुकुन्दराम चक्रवर्ती ने अपने चण्डी काव्य लिखे जो बड़े लोकप्रिय हुए। इस काल भी नागमाता-सम्बन्धी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत हुईं।

सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में गोपीचन्द (भरथरी) संबंधी गीत लिखे गये, जिनका प्रभाव बंगला के बाहर के साहित्यों पर भी पड़ा। उस काल वह विषय सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ।

साहित्य की दृष्टि से अठारहवीं सदी कुछ विशेष महत्व की न थी, पर हिन्दू-मुसलिम एकता की बुनियाद उसमें

जरूर पड़ी, वह विशेषकर इस कारण भी कि फिरंगी सरकार बंगाल में तब प्रबल होने लगी थी। अठारहवीं सदी में ही बंगला गद्य का भी आरम्भ हुआ और कुछ कहानियाँ लिखी गईं। राम राम वसु ने 'प्रतापादित्यचरित' और मृत्युञ्जय विद्यालंकार ने 'पुरुष-परीक्षा' लिखी। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ होते ही 'समाचार-दर्पण' नाम से बंगला में पहला पत्र निकला।

उन्नीसवीं सदी में राजा राममोहनराय और ब्रह्म-समाज के उद्योग से बंगाल में एक नया जागरण हुआ। उपनिषदों के अनुवाद बंगला में कर लिये गये, और अनेक संस्कृत ग्रंथ बंगला पढ़ने वालों की परिधि में आये। उस काल का बंगला-गद्य संस्कृत शब्दों से बोझिल है। उसको प्रवाहमय और सरल बनाने का श्रेय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, प्यारीचन्द मित्र और अक्षयकुमार दत्त को है। प्यारीचन्द मित्र ने तो 'आलानेर घरेर दुलाल' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी कलकत्ते में बोली जाने वाली टकसाली जबान में लिखा। अक्षय बाबू के निबन्ध विविध विषयों पर हैं।

उन्नीसवीं सदी के बीच बंगला को दो महान् और यशस्वी साहित्यकारों का योग मिला। उनमें एक माइकेल मधुसूदन दत्त थे और दूसरे बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय। वह युग ही असल में उन्हीं दोनों के नाम पर चला और उनके

प्रयास से एक नये तरुण बंगाल का जन्म हुआ। मधुसूदन दत्त का 'मेघनादवध काव्य' और 'ब्रजांगना काव्य' अत्यन्त मधुर भाषा में लिखे गये और बड़े लोकप्रिय हुए। बंकिम ने सही उपन्यास की परम्परा बंगला में डाली और अनेक देशी भाषाओं को अपने उपन्यासों से प्रभावित किया। दुर्गेशनन्दिनी, राजसिंह, सीताराम, विषवृक्ष, कृष्णकान्तेर विल, कपालकुण्डला और आनन्दमठ बंकिम के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। आनन्दमठ में ही भारत का राष्ट्रीय गान 'बन्देमातरम्' है। उसी काल में प्रसिद्ध और मेधावी दार्शनिक रामकृष्ण परमहंस के चेले स्वामी विवेकानन्द हुए, जिन्होंने बंगाल के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला।

रंगलाल बन्द्योपाध्याय ने तभी राजपूत वीरता-संबन्धी कुछ बड़ी सुन्दर कविताएँ लिखीं। कालिदास के 'कुमार-सम्भव' का भी बंगला अनुवाद उसी कवि ने प्रस्तुत किया।

बंगला नाटक के निर्माताओं में पहला प्रस्थान दीनबन्धु मित्र का है। उनका 'नील दर्पण' बंगाल के किसानों पर नील बोने वाले फिरंगी जमींदारों के अत्याचार का सचमुच दर्पण ही बनकर साहित्य में आया।

राजा राजेन्द्रलाल मित्र ने अनेक ऐतिहासिक निबन्ध लिखे और भूदेव मुखोपाध्याय ने अपने सामाजिक और सांस्कृतिक निबन्धों से बंगला को सँवारा। उसी काल का कलिप्रसन्न सिन्हा द्वारा कलकत्ते की बोली में लिखा 'हुतोम

पेन्चार नक्शा' उस काल के कलकत्ते के समाज का चित्र उपस्थित करता है।

बिहारीलाल चक्रवर्ती ने जिस कल्पना-प्रधान काव्यधारा का आरम्भ किया, उसकी परिणति रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं में हुई। रवि बाबू ने स्वयं बिहारीलाल का ऋण स्वीकार किया है। मधुसूदन दत्त के बाद ही नवीनचन्द्र सेन का बंगला काव्य में स्थान है।

रोमेशचन्द्रदत्त बंगाल के जाने हुए इतिहासकार हो गये हैं। उन्होंने अनेक उपन्यास भी लिखे हैं। गिरीशचन्द्र घोष भी तभी हुए और १९११ ई० तक जीते रहे। उन्होंने करीब ९० नाटक, फार्स, स्केच आदि लिखे। उसी काल के पुरातत्व के महान् पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने सन् १९३२ तक अपने विविध पांडित्य का लाभ बंगला को दिया।

परन्तु बंगला साहित्य का सबसे महान् व्यक्तित्व रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्रस्तुत किया। सन् १९१३ में उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला और संसार ने उनकी सर्वतोमुखी मेधा के सामने सिर झुकाया। इधर की सदियों में इतना महान् साहित्यकार न हुआ। कालिदास के बाद भारतीय साहित्य में रवीन्द्रनाथ ठाकुर शायद सबसे महान् व्यक्ति हुए। उन्होंने बंगला के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी लिखा। उनकी कृतियों में काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी निबन्ध सभी हैं। पर रवि ठाकुर प्रधानतः कवि थे। प्रायः आधी सदी तक उनका

लाभ बंगला को हुआ और उनकी अनेक रचनाएँ संसार की अनेक भाषाओं में अनूदित हुईं।

रवि ठाकुर की प्रतिभा से अनेक कवि और नाटककार दब गये, फिर भी उस काल के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकारों के नाम ये हैं—देवेन्द्रनाथ सेन, अक्षयकुमार बड़ाल, रजनीकान्त सेन, श्रीमती कामिनीराय, श्रीमती स्वर्णकुमारी देवी (उपन्यासकार), रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी (निबन्धकार), सत्येन्द्रनाथ दत्त (कवि), प्रभातकुमार मुखोपाध्याय (उपन्यास-कहानीकार), द्विजेन्द्रलाल राय (नाटककार), क्षीरादेचन्द्र विद्याविनोद (नाटककार), अतुलप्रसाद सेन (गीतकार) और राखालदास बन्द्योपाध्याय (इतिहासकार और उपन्यासकार)।

बंगला के सबसे बड़े उन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय हुए। उनके उपन्यासों में बंगाल का आर्द्र और करुण जीवन फूट पड़ा। विजया, चरित्रहीन, श्रीकान्त, परिणीता, अरक्षणीया आदि उनके अनेक उपन्यास देश भर में प्रसिद्ध हुए।

शरत्चन्द्र के बाद सामाजिक क्रान्ति ने एक नई दिशा की ओर संकेत किया। प्रगतिशील साहित्यकारों ने विशेष मनोयोग से नये युग का साहित्य सम्हाला। उपन्यास के क्षेत्र में अन्य अनेक मेधावी लेखकों के अतिरिक्त मनोज वसु और ताराशंकर बन्द्योपाध्याय अग्रणी हैं। आलोचना के क्षेत्र में गोपाल हालदार ने विशेष स्फूर्ति भरी।

३

गुजराती

गुजरात का साहित्य भी काफी भरा-पूरा है। गुजराती बोलने वालों की संख्या प्रायः एक करोड़ है और उसके बोलने वाले न केवल भारत में बल्कि एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में हैं।

गुजराती का साहित्य जैनों ने उसमें अपने ग्रंथ लिखकर आरम्भ किया। उस दृष्टि से वह साहित्य करीब दसवीं सदी में ही शुरू हो गया था। जैनों से भिन्न साहित्यकारों का उदय पन्द्रहवीं सदी के बाद हुआ। तभी मीराबाई ने अपने मधुर पद लिखे। गुजराती जनता में वे इतने लोक-प्रिय हुए कि भाषा को जहाँ-तहाँ बदलकर उन्हें गुजराती बना डाला गया।

उस काल के प्रधान कवि नरसिंह मेहता, बल्लभ मेवादो और अखो हुए। तीनों ने धर्म-सम्बन्धी कविताएँ लिखीं जिनका बड़ा आदर हुआ। बल्लभ ने प्रकृति में मातृत्व देखा और अखो ने दुनियावी बेईमानी को धिक्कारा। उनके बाद

ही गुजराती साहित्य के महान् कृतिकार प्रेमानन्द ने पौराणिक आख्यान लिखे जो बहुत काल तक जीवन के आदर्श बने रहे।

उसी काल सामल ने कहानियाँ लिखीं। उसकी छन्दबद्ध कहानियों में जात-पाँत का भेद-भाव न रहा। उस दिशा में उसने नरसिंह मेहता का अनुकरण किया। सामल के बाद एक नई धारा बही और नये कवियों ने समाज की रूढ़ियों और ठेकेदारों पर गहरे आघात किये। धर्म का सहारा उन्होंने छोड़ दिया और सामाजिक कुरीतियों को अपने काव्य का विषय बनाया। पुराने दृष्टिकोण के कवियों में उस काल प्रधान दयाराम हुआ जिसने प्रेम और रस से ओतप्रोत बल्लभ सम्प्रदाय-सम्बन्धी कविताएँ लिखीं।

१८२५ ई० से गुजराती साहित्य का वर्त्तमान युग शुरू होता है। उसके आरम्भ करने वालों में प्रधान दलपतराम और नर्मदाशंकर थे। उन्नीसवीं सदी के अन्त में उनका देहान्त हुआ। उन्होंने भाषा में नई जान डाली, नया रस भरा। गद्य भी तब नये सिरे से लिखा जाने लगा। पिछले काल में गुजराती के अच्छे लेखक निम्नलिखित हुए—महात्मा गांधी, काका कालेलकर, ध्रुव, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, मेघाणी, कलापी, उमाशंकर जोशी।

नीचे उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के कुछ प्रधान

साहित्यकारों के नाम दिये जाते हैं—

ग० म० त्रिपाठी ने सरस्वतीचन्द्र नाम का चार भागों में देशी राज्यों-सम्बन्धी उपन्यास लिखा। बहरामजी मालाबारी ने काव्य में दलपत और नर्मदाशंकर का अनुकरण किया। महात्मा गांधी ने गुजराती में अनेक पुस्तकें लिखीं और शैली को निखारा। पारसी लेखक खबरदार ने गद्य-पद्य दोनों लिखे। उसकी शैली में काफी व्यंग्य है। नानालाल दलपतराम ने गीति काव्यों में एक नई मौलिक धारा बहाई। काव्य के अतिरिक्त उसने नाटक, उपन्यास और निबन्ध भी लिखे। आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव ने गुजराती में धर्म और दर्शन पर अनेक ग्रंथ लिखे और दीवान बहादुर ध्रुव ने अनेक संस्कृत नाटकों के अनुवाद किये।

नीलकण्ठ ने गुजराती में सुन्दर आलोचना की परम्परा प्रस्तुत की। ठाकुर ने गद्य-पद्य दोनों लिखे। गद्य में तो उसने अपनी शैली ही चला दी। कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने गुजराती साहित्य को अपने ऐतिहासिक उपन्यासों से समृद्ध किया और आज भी करते जा रहे हैं। रमनलाल देसाई भी जाने हुए उपन्यासकार हैं। उन्होंने पारिवारिक और सामाजिक विषयों का अपने उपन्यासों और नाटकों में चित्रण किया। मेघाणी जी ने गुजराती लोक-कथाओं का

संग्रह कर अनेक प्रान्तों के तत्सम्बन्धी प्रयत्नों पर प्रभाव डाला। दिवेटिया ने काव्य और आलोचना दोनों में अपनी शक्ति प्रदर्शित की। मणिशंकर रतन जी भट्ट ने 'कान्त' नाम से गुजराती में मधुर काव्यधारा बहाई। गुजराती साहित्य के पिछले काल के प्रधान कवियों में अग्रणी 'कलापी' माने जाते हैं। उनका प्रकृत नाम सुरसिंह जी गोहिल था और वे काठियावाड़ में लाठी के ठाकुर थे। उनकी कविता में बड़ी करुणा है। १९०० ई० में उनका देहान्त हुआ। उमाशंकर जोशी ने इधर आलोचना के क्षेत्र में काफी लिखा है।

गुजराती साहित्य को पारसी, मुसलमान और हिन्दू तीनों का योग मिला और तीनों ने बिना किसी भेदभाव के अपनी सुन्दरतम रचनाएँ उसे दीं।

४

मराठी

मराठी भाषा का जन्म महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश से करीब दसवीं सदी में ही हो गया था। मराठी का विस्तार उत्तर में डामन से लेकर दक्षिण में गोवा तक है और पश्चिम में बम्बई से लेकर मध्यप्रदेश तक है।

आरम्भ में मराठी में बहुत काल तक धार्मिक काव्य ही लिखे गये। नाथ पंथ और भक्ति-मार्ग के आधार से इस दिशा में विशेष प्रगति हुई। वैसे परम्परा के अनुसार तो मराठी भाषा का आरम्भ १२वीं सदी के अन्त में ही हो गया था। उसका आरम्भ-कर्त्ता दार्शनिक कवि मुकुन्द-राज माना जाता है। महानुभाव पन्थ की भाषा उसके कुछ ही बाद सारे भारत में मराठी हुई। उस पन्थ के प्रधान काव्यकार भास्करभट्ट, नरेन्द्र, दामोदरभट्ट और महीन्द्रभट्ट हुए। भास्करभट्ट ने 'शिशुपाल वध' और 'उद्धवगीत' लिखे, नरेन्द्र ने 'रुक्मिणी स्वयम्वर,' दामोदरभट्ट ने 'वच्छहरण' और महीन्द्रभट्ट ने उस पन्थ के प्रवर्त्तक चक्रधर का चरित लिखा।

१३वीं सदी के अन्त में कवि और दार्शनिक ज्ञानेश्वर हुए और उन्होंने धार्मिक आन्दोलन को एक नया रुख दिया। 'भगवद्‌गीता' पर अत्यन्त सुन्दर शैली में उनकी व्याख्या 'ज्ञानेश्वरी' प्रस्तुत हुई। उनका दूसरा ग्रंथ 'अमृतानुभव' उतना लोकप्रिय न हो सका। सन्त ज्ञानेश्वर से सन्त नामदेव उम्र में कुछ बड़े थे। वे विठोबा के चेले थे और उनमें ग़ज़ब की लगन थी। उनकी भक्ति अत्यन्त सरल थी और उन्होंने अनेक भक्तिपरक मधुर पद रचे। उनके 'अभंग' पंजाब तक जा पहुँचे।

'अभंगों' की परिपाटी बाद तक मराठी में चलती रही। नामदेव की दासी जनाबाई ने भी अनेक मधुर अभंग लिखे। इस पन्थ के अधिकतर गायक नीच कुलों के थे। गोरा कुम्हार था, विठोबा (नामदेव का गुरु) सौदागर, नरहर सुनार, स्वता माली और जोगा तेली। इन सन्तों की वाणी काव्यमयी थी और अनेक बार उनके पदों में मधुर राग फूट पड़ा।

अगली सदियाँ मराठी साहित्य में अन्धकारमयी रहीं। १५वीं सदी के बीच भानुदास ने विठोबा के अनुसरण में कुछ प्रयत्न किये। उनके पड़पोते एकनाथ के गुरु जनार्दन स्वामी ने तब अपना दत्त पंथ चलाया।

एकनाथ ने 'एकनाथी भागवत्' और 'भावार्थ रामायण'

रचे । 'रुक्मिणी-स्वयम्वर' भी उन्हींका लिखा है ।

एकनाथ के पोते मुक्तेश्वर ने महाभारत का पहला मराठी अनुवाद प्रस्तुत किया । अनुवाद के रूप में उसने केवल उसकी रूपरेखा ही रखी, बाकी कथा उसने अपने ही शब्दों में कही । कविता ने उसके हाथ में एक नया रुख लिया । मुक्तेश्वर के बाद ही मराठी साहित्य के तीन महान् व्यक्तित्व हुए—तुकाराम, रामदास और वामन पण्डित । वामन महान् पण्डित था । उसके प्रबन्धकाव्य सुन्दर और रसमय हैं । रामदास ने रामदासी-पन्थ चलाया । लिखा बहुत, परन्तु वामन के-से वे पंडित न थे । 'दासबोध' उन्होंने अपने चेलों के आचरण के लिये लिखा । तुकाराम जाति के मोदी थे और पढ़े-लिखे न थे । वे सन्त अधिक थे, कवि कम । परन्तु भक्ति की धारा उन्होंने भी अपने पाँच हजार अभंगों में प्रवाहित की ।

वामन पडित की संस्कृत शैली का भी काफी अनुसरण हुआ । मराठी का एक गढ़ तंजोर था, जहाँ आनन्दतनय और रघुनाथ पंडित विशेष प्रतिभावान् हुए । रघुनाथ पंडित का 'दमयन्ती-विवाह' बहुत लोकप्रिय हुआ । उस काल निरंजन माधव और सामराज्य ने भी कविता के क्षेत्र में काफी यशलाभ किया ।

अठारहवीं सदी का प्रधान कवि मोरोपन्त था । उसने

'मंत्र-भागवत्' और 'आर्या-भागवत्' लिखे। आर्या छन्द का वह बड़ा अधिकारी आचार्य है। उसकी गेय कविता की 'एकावली' काफी प्रसिद्ध हुई। साहित्य में मोरोपन्त का भी खूब अनुसरण हुआ। मोरोपन्त के बाद मध्व मुनेश्वर, अमृतराय और महीपति ने काव्यसाधना की।

उसी सदी में वीर-चरित्र (पोवादा) भी काव्य के विषय बने। 'पोवादा' की भाषा जनपरक थी, संस्कृत की बोझिल शैली से स्वतन्त्र। वीर-चरितों के अतिरिक्त एक नये किस्म की प्रेम-कविताएँ भी चलीं जिन्हें 'लावनी' भी कहते थे। लावनी छोटी गेय कविताएँ होती थीं, मात्रा छन्द में प्रस्तुत। उनमें अधिकतर राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन हुआ।

उन्नीसवीं सदी में अनेक अनुवाद हुए। संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के ग्रंथ मराठी में प्रस्तुत किये गये। इसके अतिरिक्त 'लोकहितवादी' निबंधों की भी परिपाटी चली। सन्त कवियों के अभंग संग्रहीत और सम्पादित हुए। १८४३ ई० में महाराष्ट्र का रंगमंच बना जिस पर पौराणिक नाटक खेले जाने लगे।

शीघ्र लोकहितवादियों का प्रभुत्व बढ़ा और रूढ़ियों पर चोट पड़ने लगी। गोपालहरि देशमुख ने 'शतपत्रे' नाम से उस दिशा में बार-बार आघात किये। उन्हीं दिनों महादेव गोविंद रानाडे, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर और कुन्ते

ने महाराष्ट्र का ध्यान प्राचीन भारतीयता की ओर आकर्षित किया, साथ ही पश्चिम की संस्कृति को भी उचित मात्रा में देश के लिये आदर्श माना। विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने उसी काल निबन्धमाला द्वारा मराठी में नये गद्य की शैली प्रस्तुत की। निवन्ध के रूप में उस लेखक ने अपने हाथों में एक महान् अस्त्र धारण किया। बालगंगाधर तिलक और आगरकर ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध लड़ते हुए भारतीय स्वतंत्रता के क्षेत्र में भी सराहनीय प्रयत्न किये। भगवद्गीता पर 'गीता रहस्य' नाम की तिलक की व्याख्या तो आजादी के लड़ाकों की पावन पुस्तक ही बन गई और उसका अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

अगले युग में नरसिंह चिंतामणि केलकर और पराञ्जपे ने अपने साप्ताहिक पत्रों द्वारा मराठी को खूब भरा-पूरा। काका कालेलकर के बराबर गद्यकार और पत्रकार मराठी में शायद दूसरा न हुआ।

१८८० ई० के बाद मराठी नाटक का अनवरत विकास हुआ। संस्कृत और अंग्रेजी के नाटक अनूदित हुए और खेले गये। किरलोस्कर ने संस्कृत नाटकों के खेलने में विशेष सफलता पाई। कोल्हातकर ने शेक्सपियर की शैली को सामाजिक नाटकों में अपनाया। गदकारी उस काल का सबसे बड़ा नाटककार हुआ। नाटक तब के साहित्यिक क्षेत्र में विशेष अग्रसर हुआ।

हरिनारायण आप्टे ने अनेक ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लिखे। उनके 'सूर्यग्रहण' और 'उषाकाल' का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

काव्य के क्षेत्र में यूरोपीय शैली ने अपना प्रभुत्व जमाया। संस्कृत छन्द छोड़कर मराठी छन्द अपनाये जाने लगे। केशव, सूत, गदकारी तिलक, विनायक, माधवानुज, सबने उसी शैली को अपनाया। कोल्हातकर और गदकारी ने व्यंग्यपरक प्रहसन लिखे और हास्यपरक साहित्य के निर्माताओं में कप्तान लिमाये, अत्रे और जोशी का प्राधान्य रहा। कोल्हातकर ने आलोचना में भी प्रगति की। युद्धोत्तर काव्यकाल में 'रविकिरण मण्डल' ने विशेष कार्य किये हैं। ताम्बे उस दिशा में अग्रणी था। अत्रे और माधव जुलियन उस मण्डल के प्रधान सूत्रधार हैं। माधव जुलियन व्यंग्य में असाधारण कुशल हैं। अत्रे ने नाटक के क्षेत्र में असाधारण योग्यता प्रदर्शित की है और आज के मराठी रंगमंच का वह प्रधान निर्माता है।

उपन्यास के क्षेत्र में फड़के का नाम उल्लेखनीय है। उसने अधिकतर उच्च वर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। दूसरा प्रसिद्ध मराठी नाटककार खांडेकर है। माधोलकर ने राजनीतिक उपन्यासों की रचना की। कथा-साहित्य में इधर मराठी में विषेश प्रगति हुई है। खांडेकर, फड़के और जोशी ने अनेक सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं।

५

तमिल

तमिल संस्कृत को छोड़कर भारत की भाषाओं में सबसे पुरानी है। शायद ढाई हजार साल पुरानी। उसके साहित्य पर समय-समय से संस्कृत का प्रभाव पड़ता गया है और संस्कृत के अनेक शब्द भी उसमें घुल-मिल गये हैं। पर साधारण तौर से वह संस्कृत से स्वतन्त्र है; उसका अपना साहित्य है, अपनी बोली है। उसने स्वयं संस्कृत को अनेक शब्द दिये हैं।

तमिल साहित्य का आरम्भ 'संघों' में हुआ। लगता है कि समय-समय पर 'संघम्' क़ायम हुए और बहुत काल तक दक्षिण के पांड्य राजाओं के दरबार में फलते-फूलते रहे। इस प्रकार के तीन संघों का पता चलता है। 'संघम्' का अर्थ है, अकदमी या साहित्यिक सभा। हर एक 'संघम्' में अनेक कवि और साहित्यकार हुए और प्रत्येक ने अपने कवियों और साहित्यकारों की रचनाओं का संग्रह किया। पहले 'संघम्' का प्रधान अगस्त ऋषि को बताया जाता है

और कहते हैं कि उसीने तमिल का पहला व्याकरण लिखा। दूसरे 'संघम्' की प्रधानता उसी ऋषि और उसके शिष्य तोलकापियर को दी जाती है। तोलकापियर का लिखा 'तोलकापियम्' नाम का एक व्याकरण आज भी मिलता है। बाकी और कोई पुस्तक पहले दोनों संघों की अब तक नहीं मिली है।

तीसरे 'संघम्' का साहित्य आज भी मिलता है जो कविताओं के संग्रह के रूप में बचा हुआ है। इस प्रकार के साहित्य के तीन संग्रह हैं—पहले संग्रह में आठ सुभाषितावलियाँ हैं, जिसमें ५३० कवियों की करीब ढाई हजार कविताएँ संग्रहीत हैं। इनको 'एट्टुतोगई' कहते हैं। संघम् का दूसरा संग्रह दस प्रशस्तियों का है जिनमें देवताओं के बखान में कविताएँ लिखी हैं। इनमें पाण्ड्य और चोल राजाओं एवं उस काल की जनता के भी चित्रण मिलते हैं। इस संग्रह का नाम 'पत्तुपाट्टु' है। तीसरा संग्रह अठारह कविताओं का है जो मूलतः आचार और नीति-सम्बन्धी हैं। इन अठारहों को एक साथ 'पदितेन्किलकणक्कु' कहते हैं। इन्हीं-में तमिल साहित्य का अमर त्रिवर्ग है, जिसे 'कुड़ल' कहते हैं और जिसका दूसरा लोकप्रिय नाम 'मुप्पाल' भी है। यह तिरुवल्लुवर की कृति है और धर्म, अर्थ और काम की व्याख्या करती है। 'संघम्' युग के कवियों में प्रधान नक्कीरर,

कपिलर और परनर थे। अव्वैयर 'संघम्' की सबसे प्रसिद्ध स्त्री-कवि है। अनेक संग्रहों में उसकी कविताएँ मिलती हैं। ये कवि अधिकतर ईसा की दूसरी सदी के आस-पास हुए। तीसरे 'संघम्' का युग सातवीं सदी से पहले है।

तमिल साहित्य के पाँच प्रधान काव्यों में दो—'शिलप्रदिकारम्' और 'मणिमेकलै' हैं। शिलप्रदिकारम् का कवि इलंगोअडिगल शायद ईसा की दूसरी सदी में हुआ। वह चेट राजवंश का था। इस महाकाव्य की कथा बड़ी मनोरंजक है और इसमे साहित्यिक शैली, संगीत और नाटक तीनों का व्यवहार हुआ है। मणिमेकलै की रचना कूलवाणिगम साट्टनार ने की। वह अडिगल का समकालीन था। अपने काव्य में उसने उसी वीरांगना माधवी और उसकी कन्या मणिमेकलै का कथा-विस्तार किया है, जो शिलप्रदिकारम् की नायिका है। इस प्रकार दूसरे में भी पहले की कथा चलती है।

आगे की दो-तीन सदियाँ साहित्य की दृष्टि से ऊसर थीं। छठी सदी के लगभग तिरुमुलर और कारैकाल अम्मैयार ने पुनर्जागरण का आन्दोलन उठाया। जैन और बौद्ध धर्मों पर शैव और वैष्णव सन्तों के आघात शुरू हुए। शैव मन्दिरों में नित्य गाया जाने वाला 'तिरुवाचकम्' इसी काल में लिखा गया। इसी काल में तीन महान् सन्तों—अप्पर,

सुन्दरर और सम्बन्डर के लिखे सूक्त भी 'तेवारम्' नाम से संग्रहीत हुए। १२वीं सदी में उस काल के प्रसिद्ध कवि और सेक्किलर ने शैवों का 'पेरियपुराणम्' रचा।

इसी प्रकार वैष्णव आचार्यों ने भी अनेक रचनाएँ कीं। उनके शुरू में १२ आचार्यों को आलवार कहते हैं। उनके पदों के संग्रह का नाम 'नालायिरप्रबन्दम्' है। उन सन्तों में सबसे महान् मम्मालवार था। इन्हीं आलवार सन्तों में संत पेटियालवार की कन्या सन्त आनडाल थी, जिसने अपनी महान् रचना 'नाचियारतिरुमोलि' में विष्णु के पद गाये और अपने को उसकी प्रिया कहा। आलवारों की काव्य-परम्परा में अत्यन्त सुन्दर कविताएँ प्रस्तुत हुईं। उसी काल कुछ लौकिक रचनाएँ भी हुईं जिनका धर्म से कुछ सम्बन्ध न था।

दसवीं और तेरहवीं सदियों के बीच तंजोर का चोल साम्राज्य बड़ा प्रबल रहा। उसी काल सेक्किलार ने पेरिय-पुराणम् और कम्बर ने रामायण रचा। वह रामायण तमिल काव्य की चूड़ामणि है। कम्बर १२वीं सदी में हुआ।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में धार्मिक काव्य की धारा बही और तायुमान स्वामी नें अपने मधुर काव्य तभी लिखे। तभी अतिवीर राम पाण्ड्यन् ने 'नैषध' लिखा और कूर्मपुराण का अनुवाद किया सुब्रह्मण्य की स्तुति में गाये अनुपम 'तिरुप्पुगल' की रचना भी पन्द्रहवीं सदी में अरुणगिरिनाथ ने की।

जैनों ने भी तमिल साहित्य के विकास में अपना योग दिया। तमिल के पंचमहाकाव्यों में प्रधान 'जीवकचिन्तामणि' जैन तिरुत्तक देवर की रचना है। इस काव्य ने संस्कृत-काव्य-रूप का तमिल में प्रारम्भ किया।

पुर्तगालियों के आने के साथ १६वीं सदी के अन्त में तमिल साहित्य के वर्त्तमान रूप का आरम्भ हुआ। राबर्ट दी नौबिलो ने अपना तत्वबोधक स्वामी नाम रखकर तमिल में अनेक ग्रंथ लिखे और तमिल-पुर्तगाली कोष भी प्रस्तुत किया। ऐसे ही एक दूसरे पुर्तगाली ने वीर महामुनि के नाम से अनेक ग्रन्थ लिखे। उसके अनेक काव्य भी उपलब्ध हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य यूरोप के प्रभाव में आकर तमिल साहित्य में नई लहर उठी। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं और १८७० में सुब्रह्मनिया अय्यर का दैनिक 'स्वदेशमित्रन्' छपने लगा जो आज भी प्रबल है। इस प्रकार तमिल गद्य का काफी उत्कर्ष हुआ। गद्य की ही भाँति इधर हाल में तमिल नाटकों का भी काफी विकास हुआ है। पुराने नाटक तो नष्ट हो गये हैं परन्तु नये नाटक पर्याप्त संख्या में इधर निकलते गये हैं। सुन्दरपिल्ले का 'मनोन्मणीयम्' माना हुआ वीर छन्द में प्रस्तुत नाटक है। लक्ष्मण पिल्ले की 'सत्यवती' शेक्सपियर की 'सिम्बेलीन' पर आधारित है। सूर्यनारायण शास्त्री के नाटक 'रूपवती' और

'कुलवती' और 'सरसलोचन', चेट्टियर की 'सरसांगी' काफी यश कमा चुकी हैं।

इधर के कवियों में शास्त्रीयर, वेदनायकम् पिल्ले और सुब्रमणियम भारती काफी प्रसिद्ध हुए हैं। इनमें अन्तिम राष्ट्रीय कवि है जिसने अपने 'स्वदेशगीतम्' में बड़ी सुन्दर राष्ट्रीय कविताएँ प्रस्तुत कीं।

गद्य और कथा-साहित्य में इधर विशेष उन्नति हुई है। इस युग का सबसे पहला गद्यकार तांडवराय मुदलियर है, जिसने तमिल का प्रसिद्ध 'पंचतंत्रम्' लिखा। तमिल की सरल और शालीन गद्य शैली अरुमुग नवलर ने प्रस्तुत की। राजम् अय्यर ने पहला यथार्थवादी उपन्यास 'कमलाम्बाल' लिखा। माधविया की 'पद्मावती' भी यथार्थवादी उपन्यासों में से है। उसी परम्परा में सरवन पिल्ले की 'मोहनांगी' है।

तमिल साहित्य का विस्तार बड़ा है और विस्तार के साथ ही उसकी चोटी भी ऊँची है। इतना ऋद्ध साहित्य इस देश की भाषाओं में कम है। आज भी सुन्दरतम कृतियों की साहित्य में रचना हो रही है।

६

तेलुगू

तेलुगू साहित्य भी तमिल की ही तरह संस्कृत से स्वतन्त्र द्राविड़-वर्ग का है। वैसे कहा तो वह साहित्य भी बहुत प्राचीन जाता है परन्तु आठवीं सदी से पहले की रचनाएँ उसमें बहुत कम मिलती हैं। तेलुगू साहित्य का आदि काल ११ वीं सदी के आरम्भ से शुरू होता है।

तेलुगू साहित्य का पहला कवि नन्नय ११ वीं सदी के आरम्भ में हुआ, जब गोदावरी के तीर राजमहेन्द्रवरम् में पूर्वी चालुक्य राजा राजराज शासन करता था। नारायण भट्ट की सहायता से उसने महाभारत का अनुवाद तेलुगू में किया। तब तक नारायण भट्ट आठ भाषाओं में अपनी कविताओं के लिये प्रसिद्ध हो चुका था। तेलुगू में भी उसने कविता की और नाम कमाया। दोनों मिलकर केवल तीन ही पर्व तेलुगू में प्रस्तुत कर सके, पर उस अनुवाद की शैली अत्यन्त शालीन थी।

दो सदियों बाद तिक्कण ने अपना 'निर्वचनोत्तररामा-

यण' लिखा । उसने महाभारत तेलुगू में पूरी कर दी । तिक्कण के अनेक समकालीनों ने काव्य रचे पर अधिकतर वे पुराणों और संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद ही थे । तेलुगू की चम्पू शैली की रामायण पाँच कवियों ने मिलकर प्रस्तुत की । सोमनाथ के वासव पुराण और 'पंडित राध्य चरित्र' वीर शैव आन्दोलन के प्रधान ग्रन्थ हैं ।

पन्द्रहवीं सदी में महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल में वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन ज़ोर से चल पड़ा था । तभी पोतन ने भागवत लिखा जिससे तेलुगू साहित्य को एक नई दिशा मिली । बालकृष्ण तेलुगू कवियों के आराध्य हुए । इन्हीं दिनों श्रीनाथ नाम का विख्यात साहित्यकार हुआ जो दरबार-दरबार पूजा गया । और जिसे 'कवि सार्वभौम' की उपाधि मिली । उसने तेलुगू में अनेक अद्‌भुत माधुर्य-भरे काव्य लिखे । नैषध, काशीखण्डम्, भीमखण्डम्, हरविलासम् और पल्नति वीर चरित्रम् उसकी ही रचनाएँ हैं, जिनका उस साहित्य में ऊँचा स्थान है ।

विजयनगर राजकाल में भी तेलुगू साहित्य की उन्नति हुई । उस काल की शैली मृदुल और मधुर थी । नचन सोमनाथ ने 'उत्तर हरिवंश' लिखा और पीरविरन्न ने 'जैन भारतम्' और 'शकुन्तला परिणयम्' मधुर पद्य में लिखे । इस काल विशेष महत्व प्रबन्ध काव्यों को मिला । राजा

कृष्णदेवराय ने स्वयं असाधारण काव्य-शक्ति द्वारा समकालीन जीवन अपने काव्य 'अमुक्तमल्यद' में मुखरित किया। कृष्णदेवराय के कवियों में सबसे महान् पेद्दन था। उसने अपने 'अनुचरित' में सरल मानव प्रवर और सुन्दरी कन्या वरधुनि का प्रेम-वर्णन किया है। कृष्णदेवराय के दरबार के आठ महान् कवि 'अष्ट दिग्गज' कहलाते थे। इनमें धूर्जटी ने 'कलहस्ति महात्म्य' लिखा। मल्लन्न ने 'राजशेखर विलास', तल्लपक ने 'अष्टमहिषि कल्याण' आदि। रामकृष्ण ने 'पांडुरंग महात्म्य' लिखा। नृसिंह और रामराज्य भूषण भी उस राजसभा के यशस्वी कवि थे। रामराज्य भूषण के रूपक 'वसुचरित्र' के बाद में अनेक अनुकरण हुए।

दक्षिण तेलुगू प्रान्त में वेंकट कवि विशेष प्रसिद्ध हुआ है। उसकी 'विजय-विलासम्' और 'सरगोधा चरित्रम्' नाम की रचनाएँ अपने सौन्दर्य के लिये काफी प्रसिद्ध हुईं। अन्य कवि साधारणतः पुरानी शैली में ही लिखते रहे और उनकी शैली संस्कृत आधारों से आगे न बढ़ी।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियाँ अधिकतर ऊसर ही रहीं और देश सभी प्रकार से अकाल से परेशान रहा। बीसवीं सदी में वीरेशलिंगम् ने साहित्यिक शैली को नया रूप दिया और उसे जन-बोली के निकट खींच लाया।

आधुनिक तेलुगू साहित्य का वह जनक था। उसकी प्रतिभा भी बहुमुखी थी और उसने चरित, उपन्यास, काव्य, अलंकार सभी कुछ लिखा।

लक्ष्मी नरसिंहम् आन्ध्र का अन्ध कवि कहलाता है। उसके उपन्यास और नाटक बड़ी सजीवता व ताजगी लिये हुए हैं। गुरजद अप्पाराव ने सामाजिक नाटक 'कन्या-शुल्कम्' लिखा, जो काफी विख्यात हुआ। उसके मित्र राम-मूर्ति पन्तुल ने वर्त्तमान तेलुगू साहित्य के विकास में प्रधान भाग लिया। नई शक्ति, नया रूप, नई आजादी उस साहित्य को मिली। रायरोलु ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्य-धारा आन्ध्रों में बहाई और जिस साहित्य-समिति का आगे श्रीगणेश हुआ, आज के सुन्दरतम तेलुगू साहित्यकार उसी के सदस्य हैं।

इधर पीठापुरम् के रामराव बहादुर ने सुन्दर गीति-काव्य प्रस्तुत किये हैं। प्रोद्दतुर के कवियों ने भी काव्य-क्षेत्र में सुन्दर रचनाएँ की हैं। गडियराम वेंकट शेष शास्त्री का 'शिव भारत' शिवाजी के भारत पर सुन्दर काव्य है। महत्व का एक और काव्य 'राणा प्रतापसिंह चरित्रम्' है, जिसका विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है।

७

कन्नड

कन्नड कर्नाटक में बोली जाती है जो दक्षिण के बीच है। कन्नड साहित्य का आरम्भ पाँचवीं सदी ईस्वी के अभिलेखों से होता है, जिनपर संस्कृत का साफ प्रभाव है। ७०० ई० में 'कविराज मार्ग' लिखा गया जिसका डेढ़ सौ वर्ष बाद राष्ट्रकूट सम्राट् नृपतुंग ने नया संस्कार किया। कन्नड साहित्य का यह पहला ग्रन्थ है। इस अलंकार-शास्त्र में अनेक पुराने साहित्यकारों का उल्लेख हुआ है।

९०० से १२०० के बीच कन्नड भाषा को संस्कृत से प्रभावित करने के प्रयत्न हुए। उस काल चम्पू शैली में यानी गद्य-पद्य मिले ऐतिहासिक काव्य लिखे गये। रामायण और महाभारत भी साहित्य में उतरे। कहा जाता है कि चम्पू शैली संस्कृत को कन्नड से ही मिली। ९४१ ई० में पम्पा ने 'भारत' अथवा 'विक्रमार्जुन-विजय' काव्य लिखा। पम्पा जैन कर्नाटक का सबसे महान् साहित्यकार था। वही कन्नड का पहला कवि भी था। उसकी बताई

राह पर पीछे अनेक कवि चल पड़े। पोन्न, रन्न, नागचन्द्र आदि उसी परम्परा के कवि थे।

चावुण्डराज ने १० वीं सदी में कन्नड गद्य का पहला ग्रन्थ 'चावुण्डराज-पुराण' लिखा। कुछ ही काल बाद नाग-वर्मा ने अपनी 'कादम्बरी' और 'चंडोम्बुधि' लिखी।

१२वीं सदी के मध्य एक नया साहित्यिक आन्दोलन चल पड़ा और शैली के क्षेत्र में एक क्रान्ति उठ खड़ी हुई। संस्कृत-बोझिल शैली की जगह जनपरक भाषा का उपयोग हुआ। सरल शक्तिम कन्नड गद्य लिखा जाने लगा, जो 'वचन' साहित्य कहलाया। इस आन्दोलन का नेता वीर शैव सम्प्र-दाय का प्रवर्तक वासवेश्वर था। अनेक वचनकारों ने उस काल अपने 'वचन' कहे। उनमें प्रधान वासव, अल्लम प्रभु और नारी सन्त अक्कमहादेवी थे। सदी के अंत में हरिहर और राघवांक हुए। चौदहवीं सदी में विजयनगर साम्राज्य की संरक्षा में कन्नड साहित्य का शालीन युग शुरू हुआ। सभी सम्प्रदायों के कवियों ने कन्नड साहित्य का उस काल विकास किया। कुमार व्यास और कुमार वाल्मीकि दोनों उच्चकोटि के कवि थे जिन्होंने उस साहित्य को भरा-पूरा। पुरन्दरदास और कनकदास ने अपनी कृतियों से कन्नड को सनाथ किया। उनके गीत 'दासकूट' कहलाते हैं जो सभी कन्नड बोलने वालों को प्रिय हैं।

सत्रहवीं सदी में फिर एक बार प्राचीन शैली की ओर लौटने का प्रयास हुआ, पर अठारहवीं सदी में जो लोक-नाटक शुरू हुए, उनसे उस आन्दोलन की गति रुक गई। उन्नीसवीं सदी के अंत में अनेक वैज्ञानिक ग्रंथों का कन्नड में निर्माण हुआ और साधारण मानव के दुःख-सुख-सम्बन्धी रचनाएँ गीतों में प्रस्तुत होने लगीं। उन रचनाओं को 'त्रिपदी' कहते हैं, क्योंकि उनमें तीन पंक्तियाँ होती थीं। बीसवीं सदी के साथ कन्नड के वर्तमान युग का आरम्भ होता है। शीघ्र गुंडप्पा, श्रीकंठैया, मास्ती, पंजे, बेन्द्रे, साली, आनंदकंद, सीतारमैया और मधुर चेन्मा के-से कवियों ने कन्नड के साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। फिर अन्य नये कवि भी उस साहित्य में यशस्वी हुए। उनमें प्रधान पुट्टप्पा; नृसिंहाचार्य, राजरत्न, शंकर भट्ट, विनायक और रसिक रंग प्रधान थे। यह प्रारम्भिक युग विशेषकर रूमानी कविता का था।

केरूर, पंजे और मास्ती ने कथा-साहित्य का आरंभ किया। मास्ती उस दिशा में बड़ा सफल हुआ। उसका 'सुबण्ण' चरित-चित्रण का सुन्दर नमूना है। इसके अतिरिक्त कन्नड़ में कई दूसरे कहानीकार भी क्षमता से लिखने लगे—जैसे, आनन्द, आनन्दकन्द, कृष्णकुमार और कृष्णराव। राजरत्न ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

उपन्यास और नाटक का भी समारम्भ हुआ। पहले दूसरी भाषाओं, विशेषकर बंगला के उपन्यास आधार बने, फिर पुट्टना ने मौलिक सामाजिक उपन्यास लिखे। कारन्त कृष्णराव, आनन्दकन्द, पुटुप्पा और गोकाक ने कन्नड में अच्छे उपन्यास लिखे। हुइलगोल और केरूर ने सामाजिक नाटकों का आरम्भ किया। इस दिशा में सबसे सुन्दर प्रयत्न मैसूर के कैलाशम् ने किया। परन्तु समाज की आलोचना और सुधार के रूप में नाटक जागीरदार (श्रीरंग) ने लिखे।

कन्नड के दूसरे नाटककार कारन्त, कस्तूरी और सम्स हैं। कामत्, कृष्णराव, कुलकर्णी, बेन्द्रे और श्रीरंग ने एकांकी भी लिखे। कारन्त ने तो ओप्रा और छाया-नाटक भी लिख डाले।

कन्नड साहित्य ने इधर काफी उन्नति की है और नये-नये प्रयोग उसमें होते रहे हैं। प्रगतिशील साहित्य भी काफी मात्रा में इधर उस भाषा में आया है।

८

मलयालम्

मलाबार यानी बंबई के दक्षिण अरबसागर और पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों के बीच रहने वालों की बोली मलयालम् है। मलयालम् भी द्राविड़ भाषाओं में से ही है।

मलयालम् का साहित्य कन्नड की ही भाँति असल में काफी पीछे का है। वैसे ९वीं सदी में ही राजाओं के अभिलेख मलयालम् में लिखे जाने लगे थे। परन्तु उसके साहित्य का आरम्भ शायद १४वीं सदी के बाद ही हुआ। १४वीं सदी में संस्कृत और मलयालम् छन्दों की मिली-जुली शैली मिलती है। उस काल की मलयालम् की शैली को मणि-प्रबालम् कहते हैं, क्योंकि उसमें संस्कृत और मलयालम् दोनों की सुन्दरता मिली थी। मलयालम् में १५वीं सदी की 'चन्द्रोत्सव' नामक संस्कृत छन्द में लिखी एक समूची कविता मिल गई है।

शुरू के काल में दूसरे दक्षिणी साहित्यों की ही भाँति मलयालम् में भी संस्कृत के रामायण, महाभारत, पुराणों

आदि के अनुवाद हुए और एक लम्बे जमाने तक होते रहे। उसी काल में मलयालम् में चम्पू का भी उदय हुआ, जिसमें गद्य-पद्य दोनों लिखे गये। महिष मंगल चम्पू शैली का सबसे बड़ा मलयाली कवि है। उसका 'नैषध' चम्पू महाभारत से लिया गया है और 'राजरत्नावलीय' कोचीन के राजा को प्रशस्ति में लिखा गया है। परन्तु उसका 'कोटिविरहम्' लौकिक काव्य है जिसमें विरह की कथा वर्णित है।

अट्ठारहवीं सदी में मलयालम् में दो प्रकार के साहित्यों का उदय हुआ। इनमें एक 'तुल्लल' कहलाता था, जो त्यौहारों पर गाया जाता था। इस प्रकार के गीतों का प्रधान गायक कुंचन नम्बियार था। इसमें मुद्राओं के साथ-साथ गीतों का गायन होता था। विषय इसके संस्कृत के महाकाव्यों से लिये जाते थे परन्तु मलयाली जीवन उसमें खुलकर आता था। कुंचन नम्बियार चोटी का व्यंग्यकार था और उसने अपने समय के समाज पर बड़े तीखे व्यंग्य किये। मालावार का वह सबसे लोकप्रिय कवि है।

दूसरे प्रकार का मालावारी साहित्य 'कथकली' में विकसित हुआ। कथकली वास्तव में नाटक साहित्य है। बहुत पहले से ही चाक्यार नाम के अभिनेता संस्कृत नाटक खेलते आये थे। परन्तु उनके खेल केवल ऊँचे वर्ग के लोग ही देख पाते थे। १७वीं सदी में देहात के नाटक कथकली

नाम से साहित्य में आये। इनमें केवल मुद्राओं से भाव व्यक्त किये जाते हैं और उनके सम्बन्ध के शब्द या श्लोक परदे के पीछे से गाये जाते हैं। अधिकतर कथकली संस्कृत में ही हैं।

१९वीं सदी में मलयालम् का केन्द्र क्रन्गनोर बना। नये लेखक वेण्मणि नाम के कवि के निकट पहुँचे और मलयाली साहित्य को उन्होंने एक नया रुख दिया। पिता-पुत्र, नडुवथ, कातोली अच्युतमेनन, कुन्टूरनारायण मेनन, ओटोविल कुन्हि कृष्णमेनन, चम्बात्तिल चात्तुकुट्टी मन्नाडियार और नारी कवि तोट्टेकाट, इक्काहु अम्मा उस शैली में विशेष प्रसिद्ध हुए। १९वीं सदी के पिछले काल केरल वर्मा वलिया कोपिल तम्पूरन ने मलयाली कवियों का नेतृत्व किया। उसका भतीजा राजराज वर्मा भी पंडित और प्रसिद्ध कवि हुआ। इनके अलावा दक्षिण में त्रावणकोर राजकुल के केरल वर्मा, त्रिवेन्द्रम् के केशव पिल्ले, कोटारनिल शंकुण्णी और उल्लूर परमेश्वर ऐय्यर ने अपने काव्य द्वारा दक्षिणी मालाबार में नाम कमाया।

अब तक संस्कृत छन्द और मलयालम् भाषा साहित्य की विशिष्ट शैली बन चुके थे। इसी शैली में प्रतिभाशाली वेण्मणि ने अपनी मधुर कविताएँ लिखीं। उसकी कविताएँ अपने समय के व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बंध मे हैं। उसके सौतेले भाई कुंदकुट्टन तम्पन्न ने और अधिक लिखा

और अधिकतर साधारण जनता के लिये ।

इधर बीसवीं सदी के आरंभ में साहित्य का मलयालम् पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और पत्र-पत्रिकाएँ छपने लगीं, निबंध और उपन्यास लिखे जाने लगे । चन्तुमेनन ने 'इन्दु-लेखा' और 'शारदा' और अप्पनेडुन्गाडी ने कुन्दलता नामक उपन्यास लिखे ।

ग्रन्थ के प्रधान लेखक उस काल में वेनयिल कुन्ही रामन नायनार, राजा अप्पन तम्पूरन, कुन्हनमेनन, अम्बाड़ी नारायन पोदुवाल और अच्युत मेनन हुए ।

१६२५ में बल्लथोल ने रवि ठाकुर की शैली में कविताएँ लिखकर मलयालम् को एक नई दिशा दी । संस्कृत के छन्द छोड़कर उसने प्राचीन मलयालम् के छन्द अपनाये । रूप से अधिक महत्व उसने काव्य के विषय को दिया और साहित्य को सुधार का साधन बनाया । बल्लथोल इस काल का सबसे महान् मलयाली कवि है । और अपनी कविताओं के सामाजिक तत्व को कायम रखते हुए उसने मधुरता और सुन्दरता को खूब निभाया है । बल्लथोल ने रामायण भी मलयालम् में अनुवाद की है ।

सामाजिक सुधार को अपने साहित्य का विषय बनाने वालों में प्रधान कुमारन् आशन था, जिसकी अकाल मृत्यु हो गई । केशव नाद ने उस शैली को परम्परा कायम रखी ।

उल्लूर परमेश्वर अय्यर पुरानी काव्यधारा का प्रधान कवि था। बाद में उसने आलोचना को अपना विषय बनाया।

आजकल के मलयाली कवियों और उपन्यासकारों में पनिक्कर का स्थान भी पर्याप्त ऊँचा है। शैली और रूप की निखार पन्निकर की रचनाओं में काफी है। उन्नी कृष्णन् नायर ने रवि ठाकुर की कविताओं का मलयालम् में अनुवाद किया और स्वयं भी सुन्दर मौलिक गीत लिखे। शंकर कुरूप की कविताएँ मलयाली तरुणों को बड़ी प्रिय हैं। के. के. राजा का स्थान भी मालाबार के कवियों में अच्छा-खासा है। चेंगनपुजा कृष्ण पिल्ले बड़ा उत्साही सामाजिक सुधारवादी साहित्यकार है और केवल समकालीन समस्याओं को ही काव्य का सही विषय मानता है। बालमनि अम्मा मालाबार की बड़ी प्रतिभावती कवयित्री है, जिसको प्रेरणा विशेषतः वल्लथोल से मिली है।

मलयालम् ने इधर के दिनों में जो इतनी उन्नति की है और संस्कृत से अपना पल्ला छुड़ा स्वतन्त्र साहित्य का रूप धारण किया है, वह अधिकतर पिछले सामाजिक आन्दोलनों का परिणाम है। जिस लगन और प्रतिभा से मलयाली साहित्यकार मलयालम् की सेवा कर रहे हैं, वह सराहनीय है।

६

असमी

आसाम भारत का सबसे पूरबी प्रान्त है। प्राचीन काल में उसका नाम कामरूप और उसकी राजधानी का नाम प्राग्ज्योतिष था। प्राग्ज्योतिष इसलिये कि सबसे पहले प्रकाश वहीं आता था, यानी सूरज पहले वहीं निकलता था। ईसा की तेरहवीं सदी में जब अहोम जाति ने उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया तब उसका नाम आसाम और उसकी भाषा का असमी पड़ा।

असमी भाषा का प्राचीनतम रूप आसाम के पुराने राज-लेखों और सहजिया सम्प्रदाय की पुस्तक 'बौध गान ओ दोहा' में मिलता है। भाषा का यह रूप कई हजार साल पुराना है। साहित्य का उदय तेरहवीं सदी में हुआ जब राजा दुर्लभ नारायण के दरबारी कवि हेम सरस्वती ने तुकान्त पद्य में अपना 'प्रह्लाद चरित्र' लिखा। प्रायः उसी काल हरिहर और कविरत्न सरस्वती हुए। दोनों कवि थे। चौदहवीं सदी के कविराज माधव कन्दली उस काल के

सबसे बड़े कवि थे, जिन्होंने अत्यन्त सुन्दर असमी में समूचे रामायण का अनुवाद किया। उस कवि की कृति 'देवजीत' में अवतारों की मधुर स्तुति है। असमी की पहली महान् कृति यही है।

इन राजकवियों के बाद ही असमी गीतिकारों का रचना-काल आता है। इन्होंने देश के लोक-गीतों का संबन्ध पौराणिक कथाओं से जोड़कर अपने गीत लिखे। दुर्गाबर, पीताम्बर और मानकर ऐसे ही कवि हैं। इनमें शृंगार की ख़ासी साधना हुई है। उस काल के ही असमी में लिखे झाड़-फूँक के गद्यात्मक सैकड़ों-हज़ारों मंत्र हैं।

असमी साहित्य का विशेष विस्तार भक्ति सम्प्रदायक के विस्तार के साथ-साथ ही हुआ। आसाम में वैष्णव धर्म एकशरण धर्म कहलाया जिसमें वासुदेव-देवकी पुत्र की पूजा होती थी। इस दिशा में शंकरदेव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अनेक पद्य-कथायें लिखकर उसने असमी की भारती भरी। उसकी सुन्दरतम कृति 'कीर्तन घोष' है, जिसमें अत्यन्त सुकुमार और मधुर भाषा में तीसे गेय कविताओं में विष्णु लीलायें वर्णित हैं। शंकरदेव ने असमी में अंकीयनाट (एकांकी नाटक) और बड़गीत (भक्ति-गान) का भी प्रारंभ किया। इस प्रकार के नाटक असमी के अपने हैं और आज भी गाँवों में खेले जाते हैं। इनका विषय पौराणिक होता है और भाषा पद्यमयी।

असमी वैष्णव आन्दोलन का दूसरा महान् व्यक्ति उसी शंकरदेव का शिष्य माधवदेव है। उसकी प्रधान रचना अत्यन्त मधुर और गेय छंदों में लिखी 'नाम-घोष' (हजारी-घोष) है। उसमें कृष्ण-सम्बन्धी तरल रस से सराबोर अनेक कवितायें हैं। माधवदेव का यश विषेशतः बड़गोतों से फैला। उनमें कृष्ण और गोपियों की लीलायें अद्भुत भावराग से लिखी गई हैं।

वैष्णव आन्दोलन का सबसे प्रतिभावान रचयिता राम सरस्वती हुआ। उसने महाभारत का असमी में अत्यन्त सुन्दर अनुवाद किया जो वैष्णव कवियों के लिये बाद में आकर बन गया। श्रीमद्भागवत, हरिवंश और दूसरे पुराणों के अनेक काव्यबद्ध असमी अनुवाद भी तभी हुए जिनसे वैष्णव-आन्दोलन और असमी भाषा को बड़ा बल मिला।

असमी गद्य का निर्माण अहोम जाति के संपर्क से हुआ। अहोम शान जाति की एक शाखा थे और तेरहवीं सदी के आरम्भ में ही उन्होंने ब्रह्मपुत्र की घाटी पर अधिकार कर लिया। अहोमों ने स्थानीय असमी भाषा सीख ली और उसीमें वे अपना राजकाज करने लगे। असमी को अहोमों की विशेष देन 'बुरंजी' हैं। ये एक प्रकार के इतिहास हैं। इनका अर्थ है 'अजानों को सुजान बनाने का भण्डार'। शुरू की बुरंजियाँ अहोम पुरोहितों (देवधई) ने अहोमी में लिखीं

फिर राजलेखकों द्वारा वे असमी में भी लिख ली गईं। ये घटनाओं का सरस वर्णन करती हैं और असमी गद्य का प्रारम्भ करती हैं।

अठारहवीं सदी के आरम्भ में राजा रुद्रसिंह ने शाक्त साहित्य को संरक्षा दी। उस साहित्य के प्रधान रचयिता अनन्त आचार्य, रुचिनाथ कन्दली, मधुसूदन मिश्र, रामचन्द्र बड़पात्र गोहाईं आदि थे। पर शाक्त कवियों को भारती वैष्णवों का रस न बरसा सकी।

उसी काल धर्म-निरपेक्ष असमी साहित्य का निर्माण भी शुरू हुआ। रुद्रसिंह के राजकवि कविराज चक्रवर्ती ने गीतगोविन्द का अनुवाद किया और शाकुन्तल-काव्य में लोक-साहित्य की कामकला और चन्द्रकेतु की ललित कथायें कह डालीं।

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में ही बर्मियों ने आसाम पर अधिकार कर उसकी जनता पर भयानक अत्याचार किये, पर शीघ्र ही आसाम फिर अंग्रेजों के अधिकार में आया और देश की काया पलट गई। इन दोनों विदेशी शासनों का प्रभाव देश की भाषा पर बुरा पड़ा। अंग्रेजों ने तो शासन में बंगालियों को महत्व दिया, राजभाषा बंगला कर दी और असमी सभी प्रकार से अधोमुखी हुई। आसामी स्कूलों में इधर १८७३ ई० तक स्कूलों में असमी के लिये

स्थान न था, उसकी जगह बंगला ही पढ़ाई जाती रही।

असमी का पुनरुद्धार ईसाई मिशन ने किया। बाइबिल के अनुवाद के साथ-साथ उसने ओरुणोदय सम्बाद पत्र नामक एक मासिक पत्रिका भी निकाली जिसमें अंग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित आसामी तरुण अपनी असमी भाषा को निखारने-सजाने लगे। मिशन ने स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें, व्याकरण, विज्ञान आदि के ग्रन्थ देश की भाषा में प्रकाशित करना शुरू किया। गद्य की एक नई अविरल धारा अब असमी में बह चली। इस नई धारा के प्रधान लेखक आनन्द-राम धेकियल फूकन थे, पर असमी की गद्य-धारा के विस्तार में मिशन और उसके सेवक ब्राउन और ब्रोन्सन के नाम असमी के उन्नायक सदा आदर के साथ लेते रहेंगे।

उसी काल के हेमचन्द्र बडुआ उन थोड़े-से लोगों में हैं जिन्होंने अपने पुराण-पंथी समाज के दायरे से निकलकर अंग्रेज़ी सीखकर पश्चिमी साहित्यों की छाया में असमी को भरा-पूरा। हेमचन्द्र ने नाटक, उपन्यास, कोष, पाठ्य ग्रन्थ सभी लिखे और अपने प्रहसनों में तो उसने समाज के ढकोसलों का ख़ासा भंडाफोड़ किया। उसके 'कनियार कीर्तन' में अफ़ीम-चियों का व्यंग है और 'बाहिरे रोंग-सोंग भितरे कोआ-भतुरी' में धार्मिक गुरुओं के विलास-व्यसनों का भंडाफोड़ है। हेमचन्द्र के मित्र गुनाभिराम बडुआ ने सरस शैली में असमी

की पहली जीवनी लिखी। सन् ८५ में उसने 'आसामबन्धु' नामक एक मासिक पत्र निकाला।

पर असमी का विशेष कल्याण चार वर्ष बाद प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'जोनकी' ने किया। इसे कलकत्ते के आसामी विद्यार्थियों ने निकाला। साहित्य और समाज-सम्बन्धी विचारों पर इस पत्रिका ने एक सर्वथा नया, गंभीर, निर्भीक और क्रान्तिकारी रुख़ लिया। गद्य-पद्य दोनों ही इसमें प्रकाशित हुए।

असमी पद्य पर अंग्रेज़ी रोमैंटिक कवियों का भी ख़ासा प्रभाव पड़ा। उसी प्रभाव की छाया में मुक्त छन्द में भोलानाथ दास ने असमी में एक समूचा महाकाव्य ही लिख डाला। वर्त्तमान असमी की महान् कृतियाँ लखमीनाथ बेज़बड़ुआ (१८६८-१९३८) ने दीं। भोलानाथ कवि, नाटककार, पंडित और पत्रकार सभी थे। अपने प्रहसनों में उन्होंने आसामी जीवन की मूर्खताओं का भंडाफोड़ किया। उनकी यथार्थवादी कहानियाँ 'सुरभि' 'साधुकथार कुकी' और 'जोनबीड़ी' में संगृहीत हैं।

हेमचन्द्र गोस्वामी ने ऐतिहासिक निबन्ध लिखे और पुरानी असमी हस्तलिपियों की खोज की। चन्द्रकुमार अगरवाला (जन्म १८६७) की गेय कवितायें मधुर और सरस हैं। साप्ताहिक 'असमिय' उन्हींका चलाया पत्र है। पद्म-

नाथ गोहाईं बड़ुआ ने बंगला को हटाकर असमी स्कूलों में कराने में भगीरथ प्रयत्न किये। उनकी लिखी पाठ्य पुस्तकों ने असमी में नये प्राण फूँके।

इसी काल रजनीकान्त बड़दलाई ने अपने उपन्यास लिखे। उनकी कृतियाँ अधिकतर ऐतिहासिक हैं। ब्रह्म-समाजी कमलाकान्त भट्टाचार्य ने नयी सामाजिक चेतना के अपनी गद्य और पद्य की रचनाओं में बीज बोये। पुरानी रूढ़ियाँ उनकी चोट से छिन्न-भिन्न हो गईं। सत्यनाथ बोरा ने पिछली सदी के अंत और इस सदी के आरंभ में सुन्दर निबंध लिखे और हितेश्वर बड़बड़ुआ ने सुन्दर सानेट और दूसरी कवितायें लिखीं।

रघुनाथ चौधरी की कवितायें आसाम की प्रकृति के राग ध्वनित करती हैं और अम्बिकागिरि राय चौधरी की राजनीति के। मफ़ीजुद्दीन अहमद ने अपने कविता-संग्रह 'ज्ञानमालिनी' में रहस्यवादी भावधारा का सृजन किया है। प्रकृति की अनुपम गायिका नलिनीबाला देवी हैं। दण्डीनाथ कलित की कवितायें व्यंग्यात्मक हैं और सावधि आचार-विचार की रूढ़ियों पर गहरी चोट करती हैं। जतीन्द्रनाथ दुआरा अंग्रेज़ रोमैंटिक कवियों से प्रभावित हैं। भावात्मक निराशावाद उनकी कविताओं की आत्मा है। प्रेम और सौन्दर्य उनके विशेष आराध्य हैं।

पिछले बीस वर्षों में असमी साहित्य ने प्रबल प्रगतिशील धारा अपनाई है। शैलधर राजखोवा, डिम्बेश्वर नियोग, बिनंदाचंद्र बडुआ आदि की कविताओं में स्वदेश-प्रेम खुलकर बह चला है। संभवतः देश के किसी दूसरे प्रांत ने अपने साहित्य को जनांदोलनों के इतने निकट न खींचा जितना आसाम ने। पिछले काल के कवियों ने अपनी काव्य-कृतियों में जनता की दुख-दशा का खूब ही बयान किया।

कांग्रेस के देश-व्यापी आन्दोलन ने जैसे असमी साहित्य को भरा-पुरा वैसे ही उसके स्वातंत्र्य प्रेम ने असमी छन्द और भाषा को भी संस्कृत की दासता से छुड़ाकर जनता के निकट ला रखा। उसकी कहानियों में विह्वल जन-जीवन इठलाकर बहा और नई चेतना नई मंजिलें तय कीं।

१०

उड़िया

बंगला का असमी और उड़िया दोनों पर गहरा प्रभाव है, पर दोनों ने उसके योग से पीवर होकर उसके बन्धन से मुक्त होकर अपनी स्वतन्त्र काया सिरजी है। परन्तु निःसन्देह बंगला का उनपर प्रभाव उनके रूप आदि पर अपेक्षाकृत पीछे का ही है, कारण कि कम से कम उड़िया का उदय तो प्रायः छठी-सातवीं सदियों में ही हो गया था। नेपाल से मिली ताड़पत्र की हस्तलिपियों से पता चलता है कि अनेक कवियों और धर्म-गुरुओं ने तभी उड़िया में पद और दोहे लिखने शुरू कर दिये थे। इनके पद 'बौध गान ओ दोहा' में संगृहीत हैं। इनका सम्बन्ध बौद्धतन्त्रों से है।

पुरी के मन्दिर में मन्दिर का इतिहास जो ताड़पत्रों पर लिखा रखा है उससे ग्यारहवीं-बारहवीं सदी के उड़िया-गद्य का आभास मिलता है। अगली सदी का उड़िया गद्य भुवनेश्वर के राजा नरसिंह देव के शिलालेख में सुरक्षित है। तेरहवीं सदी में उस गद्य के सुगठित रूप के दर्शन होते

है। नारी-त्यौहारों की कहानियों 'ओशा' और उड़ीसा के राजकुलों के इतिहासों में भी वह गद्य सुरक्षित है। तेरहवीं-चौदहवीं सदियों की काव्य-धारा तो आधुनिक उड़िया-सी लगती है। बच्चादास का 'कलश-चौंतीसा' चौदहवीं सदी की कृति होती हुई भी श्वास-उच्छ्वास में सर्वथा आधुनिक है। उसी सदी के सरलदास का महाभारत भी असामान्य काव्य है।

इस सरलदास और उड़िया के सबसे महान् कवि उपेन्द्र भंज (अठारहवीं सदी) के बीच का काल उस साहित्य का मध्य काल है। इस बीच कम से कम तीस ऐसे कवि हुए जिनका उड़िया साहित्य में अपना स्थान है। इनमें जगन्नाथ-दास ने अपना 'उड़िया भागवत' और बलराम दास ने अपनी रामायण लिखकर उस भाषा के साहित्य पर अमिट प्रभाव डाला है।

उड़िया भाषा की एक विशेषता यह है कि भारत की अन्य भाषाओं की भाँति उसमें बोलियाँ नहीं हैं, एक करोड़ बीस लाख जनता की वह अकेली भाषा है। उसमें प्रयुक्त होने वाले सैकड़ों छन्द भी उसकी अपनी विशेषता हैं। साधारणतः उड़िया साहित्य के इतिहास को हम इसके प्रधान कृतिकारों के नाम पर इस प्रकार पाँच काल-भागों में बाँट सकते हैं—प्राचीन काल (१००० से १५०० ई०),

जगन्नाथदास-काल (१५००-१७०० ई०) उपेन्द्र भंज-काल (१७००-१८५० ई.) राधानाथ-काल (१८५०-१६०० ई.) और वर्त्तमान काल।

प्राचीन काल। इस काल की कुछ कृतियों का निर्देश ऊपर किया जा चुका है। बौध गान ओ दोहा, मदल पंजी, राजा बलभ्रद्र भंज की प्रणय-कहानी, मर्कन्द (मकरन्द ?) दास की 'केसब कोइली' आदि इसी काल की हैं। केसब कोइली चौंतीस दोहों का एक गीत है जिसे प्रत्येक उड़िया विद्यार्थी आज भी कंटस्थ करता है। सरलदास और नीलाम्बर दास भी प्राचीन काल के ही हैं। नीलाम्बर दास ने महाभारत का पद्य में अनुवाद किया और उड़िया पद्म पुराण रचा। महादेबा दास ने अपने कार्तिका-माहात्म्य में कार्तिकी पूजाओं का बखान किया।

जगन्नाथ दास-काल में चैतन्य महाप्रभु उड़ीसा पधारे। उनके पुरखे उड़ीसा के ही ब्राह्मण थे। जगन्नाथ दास का रचा उड़िया भागवत में (श्रीमद्भागवत का अनुवाद) आज भी प्रत्येक गाँव के भागबत-घर में रखा और पूजा जाता है। ग्वाल वंश के अचुतानन्ददास ने उसी सोलहवीं सदी के आरम्भ में हज़ारों आध्यात्मिक पद लिखे। तभी के जनार्दन दास की 'गोपी-भाषा' कृष्ण के विरह में गोपियों की स्थिति का बयान करती है। बलराम दास और हलधर दास अपने

रामायण के छन्दशः अनुवादों के लिये प्रसिद्ध हैं। दीनकृष्ण दास ने भी राधा-कृष्ण सम्बन्धी अनेक पदों और 'रस कोल्लोल' की रचना की। विश्वनाथ कुन्तिया ने (१७ वीं सदी) में विचित्र रामायण रचा जो उड़ीसा में बड़ा लोकप्रिय है। राजा धनंजय भंज ने रघुनाथ-बिलास आदि अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की। धारकोटे के जयसिंह और कृष्णसिंह ने भी अनेक प्रकार से इस काल उड़िया साहित्य की सेवा की।

उपेन्द्र भंज-काल के प्रधान कवि उपेन्द्र भंज हैं। उन्होंने कोड़ियों काव्य ग्रन्थ लिखे, जिनमें बैदेहिस-बिलास, कलकौतुक मुख्य हैं। इनकी कृतियों में छन्द की कलाबाज़ी बहुत हैं। उनमें अनेक प्रकार के चमत्कारों का प्रयोग हुआ है। उनके गीत 'चौपदी' कहलाते हैं। उस काल के कवियों में प्रधान उपेन्द्र के पितामह घनभंज, तेलुगू कवि गोपाल, सदानन्द कबिसूर्य, सामन्त सिंगार आदि हैं। सामन्त सिंगार की बिदग्ध चिन्तमणि कृष्ण-प्रणय का मनोहर काव्य है। उसी काल भक्तचरण, पीताम्बर दास, भीम धीबर (जाति के मल्लाह), बिस्वम्भरदास और बलदेब रथ कबिवसूर्य, केशब पट्टनायक, दाशरथीदास और जदुमणि महापात्र ने अपनी विविध काव्य-रचनायें कीं। रामदास, राजा पीताम्बर राजेन्द्र (१८ वीं सदी) और कह्नुदास भी उसी काल

के कवि हैं। तभी राजा निशंकराय की रानी ने अपनी प्रसिद्ध प्रणय-काव्य कथा 'पद्मावती-अभिलाषा' लिखी। कृष्णचरण पटनायक और गोपाल कृष्ण पटनायक की कवितायें और पद्य-रचनायें उस काल विशेष समादृत हुईं। उन्नसवीं सदी के अन्त और बीसवीं के आरम्भ में गंजाम के भुबनेश्वर कबिचन्द्र ने अपने 'सीतेशबिलास' और 'बासुदेब-बिलास' लिखे। अरखितदास के 'शरीरभेद' और पिंडिक के 'बसन्त-रास' ने भी तभी बड़ी ख्याति पायी। ब्रजरत्न बद-जेन ने प्रायः पहली बार उस साहित्य में अपने धेनकानल के राजा और मरहठों के बीच युद्ध का अपने 'समर तरंग' में वर्णन कर यथार्थवादी काव्य-धारा का श्रीगणेश किया।

राधानाथ-काल उड़ीसा पर अंग्रेजों के अधिकार से प्रारम्भ होता है। उड़िया में भी असमी की तरह ईसाई मिशनों की सहायता से गद्य को पर्याप्त बल मिला। उत्कल-दीपिका नामक साप्ताहिक पत्र का तभी प्रकाशन आरम्भ हुआ और आधुनिक उड़िया साहित्य ने अपनी नई मंजिलें तय करनी शुरू कीं। इसी पत्र के जरिये इसके सम्पादक राय बहादुर गौरीशंकर राय उड़िया साहित्य और संस्कृति के लिये इधर चालीस वर्षों से लड़ते रहे हैं।

इसी काल राधानाथ ने मुक्त छन्द में अपना काव्य 'महाजात्रा' लिखा। फ़कीर मोहन सेनापति ने अनेक रूप से

गद्य और पद्य का साहित्य भरा। उन्होंने अनेक उपन्यास भी लिखे। उस काल के सैकड़ों साहित्यकारों के बीच गोविन्द सूरदेव का नाम उल्लेखनीय है। वे काव्यकार और गीतिकार दोनों थे। उनके अनेक गीत उड़िया में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं।

आधुनिक उड़िया साहित्य भी अन्य भारतीय साहित्यों की ही भाँति पश्चिम के संपर्क से भरा-पुरा है। उसमें भी उपन्यास, नाटक, काव्य, कहानी आदि का सृजन अबाध गति से हो रहा है। आज़ादी के आन्दोलन में उसके कवियों ने भी अपने गीतों से स्वर भरे हैं। वर्तमान युग की सामाजिक प्रेरणायें उड़िया साहित्यकारों का भी दिशा-संकेत कर रही हैं।

११

उर्दू

उर्दू भारत और पाकिस्तान की भाषा है। भारत की तो वह बोली जाने वाली जबान भी है और पाकिस्तान की वह राष्ट्रभाषा है। पाकिस्तान में यद्यपि वह बोली कहीं नहीं जाती पर समझी हर जगह जाती है। भारत और पाकिस्तान को छोड़ कहीं और वह बोली-समझी भी नहीं जाती। हिन्दू-मुसलमान दोनों क़ौमों ने उर्दू को समान निष्ठा से बनाया-सजाया है। दोनों ने उस ज़बान में अपनी उत्तम से उत्तम रचना की है। जैसे पठान शिल्प-कला और मुगल-कलम हिन्दू-मुसलमानों की सम्मिलित साधना के परिणाम हैं वैसे ही उर्दू भी दोनों की एकजाई प्रसूति है।

उर्दू हिन्दी-खड़ी बोली की ही शैली है, पर वह शैली केवल साहित्य की ही नहीं सांस्कृतिक परम्परा की भी है। जिन भाषाओं की क्रियायें एक होती हैं वे वस्तुतः एक ही भाषा की शाखायें या शैलियाँ होती हैं। इससे हिन्दी और उर्दू दोनों भाषा की दृष्टि से एक ही हैं। दोनों में अन्तर

लिखावट की दृष्टि से जरूर काफ़ी है। हिन्दी देवनागरी लिपि में बायें से दाहिने को लिखी जाती है, उर्दू अरबी-फ़ारसी लिपि में दाहिने से बायें को। उर्दू शब्द का अर्थ है 'शिविर' या सेना का पड़ाव। शब्द यह तुर्की का है।

अमीर खुसरू फ़ारसी का पहला महान् लेखक था जिसने हिन्दुस्तानी (हिन्दी या उर्दू) में लिखा। उसकी उस छन्द-शैली को रेख्ता कहते हैं। इसीसे उर्दू को साधारणतः रेख्ता कहने लगे। उर्दू साहित्यिक शैली विशेषतः दकन में बनी, जहाँ मुसलमान सन्त उसी ज़बान में उपदेश देने लगे थे। उस ज़बान में लिखे दकनी सय्यद मुहम्मद बन्दा नवाज़ गोसू दराज़ (पन्द्रहवीं सदी के आरंभ में) की करीब सौ रचनाओं का हवाला मिलता है। इसी प्रकार अनेक दूसरे सूफ़ी सन्तों ने दकन, मालवा, गुजरात, हिंदुस्तान में सर्वत्र उर्दू में अपनी रचनायें कीं।

गोलकुंडा के कुतुबशाही राजकुल की संरक्षा में उर्दू खूब फली-फूली। मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने हैदराबाद बसाया और हैदराबाद तब से उर्दू का दकनी मरक़ज़ बन गया। शाह ने स्वयं उर्दू में अपना विपुल 'कुल्लियात' लिखा जो रोजमर्रा के आम जीवन का चित्र उपस्थित करता है। उसके अगले दोनों उत्तराधिकारियों ने भी उर्दू में ही अपनी रचनायें कीं।

इस काल के अन्य प्रसिद्ध कवियों में प्रधान मुल्ला वजही था, सुल्तान कुली कुतुब शाह का राजकवि। उसका प्रसिद्ध मथनवी कुतुब मुश्तरी शाहज़ादे के प्रणय-कृत्यों का बयान करता है। उसका 'सब रस' सूफ़ी कलामों की सुन्दर गद्य-रचना है। उसी काल अब्दुल्ला कुतुब शाह का दरबारी कवि गव्वासी भी हुआ। उसने अनेक अरबी-फ़ारसी कहानियों को मधुर उर्दू में लिखा। सत्रहवीं सदी के बीच बड़ी सादी और सुथरी शैली में इब्न-ए-निशाती ने अपना मथनवी 'फूलबान' लिखा।

इसी प्रकार बीजापुर के आदिलशाही सुल्तानों ने भी अपने दरबार में अनेक शायरों को अपनी संरक्षा दी। इब्राहिम आदिल शाह स्वयं असाधारण कवि था और भारतीय संगीत का पारदर्शी होने से 'जगद्गुरु' भी कहलाता था। वहीं तालीकोटा की प्रसिद्ध लड़ाई का बयान, 'फ़तहनाम-ए-निज़ामशाह' हसन शौकी ने लिखा। रुस्तुमी ने वहाँ उर्दू का पहला वीरकाव्य 'ख़ावरनामां' लिखा। आदिलशाही सल्तनत का सबसे महान् शायर नुसरती हुआ, जिसने (मनोहर) मधु-मालती की प्रणय-कथा अपने 'गुलशने-इश्क़' में लिखी। उसका 'गुल्दस्त-ए-इश्क़' उसकी फुटकल गेय कविताओं का संग्रह है।

दकन का सबसे महत्वपूर्ण कवि शम्सुद्दीन वलीउल्लाह वली (मृत्यु—१७४१ ई०) था। उसका पद्य तीन प्रकार से

संपन्न हुआ—शुद्ध दकनी में, उर्दू-दकनी में और शुद्ध उर्दू में। उसके शागिर्दों से सारा दकन एक बार भर गया था।

वली के दिल्ली आने पर उत्तर भारत में उर्दू का एक नया युग आरम्भ हुआ। अब उर्दू का मरक़ज़ दकन से उत्तर जा पहुँचा। अनेक दकनी शायर—फ़िराक़ी, फ़ख़री, आज़ाद—वली के बाद दिल्ली पहुँचे। सादी ज़बान में सूफी विचार प्रगट किये जाने लगे। हातिम इसी परम्परा का शायर था। मिर्ज़ा जाने-जानान मज़हर भी बड़ा सोफ़ियाना शायर था, जबान बड़ी फ़सीह लिखता था। उसे उर्दू का चौथा पाया कहा गया है। बाकी तीन पाये मीर, सौदा और दर्द थे।

उस काल (अठारहवीं सदी) का सबसे महान् उर्दू कवि मीर तक़ी मीर था, आगरे का रहने वाला। उसके बराबर ग़ज़ल कहने वाला उर्दू भाषा में नहीं हुआ। मीर ने चालीस हज़ार से ऊपर लाइनें लिखी हैं। उसके संग्रह 'शोल-ए-इश्क़' और 'दरिया-ए-इश्क़', दर्द और इश्क़ का लासानी इज़हार करते हैं।

मुहम्मद रफ़ी सौदा (१७१३-८०) ने नज़्म में पहले पहल ओजस्वी व्यंग्य लिखे। सौदा और ज़ौक़ उर्दू के सबसे बड़े क़सीदा लिखने वाले हैं। उसकी रचनाओं में क़सीदे, व्यंग्य, ग़ज़लें, मरसिये सभी हैं, कुल करीब १०,००० लाइनों से ऊपर।

मीर दर्द सूफ़ी था, इसीसे उसने अधिकतर मज़हबी नज़्में ही लिखी हैं। बचपन से ही उसने धार्मिक कविताओं का दामन पकड़ा और एक से एक सुन्दर कवितायें लिखता चला गया।

मीर हसन मथनवी लिखने में कुशल था। उसका मथनवी 'सिहसल बयान' बहुत विख्यात हुआ। उर्दू नज़्म का यह सबसे सुन्दर फ़िसाना है। इसमें शाहज़ादा बेनज़ीर और बद्रे मुनीर की प्रणय-कथा कही गई है। ज़बान इसकी बड़ी सादी है।

गुलाम हमदानी मुसहाफ़ी (१७५०-१८२४) लिरिक लिखने में सिद्धहस्त था। उसकी रचनाओं की आठ जिल्दें हैं। उसने तीन सौ उर्दू शायरों का फ़ारसी में संग्रह तैयार किया।

इंशा अल्ला ख़ाँ 'इंशा' अपने हास्य और व्यंग्य के लिये प्रसिद्ध हो गये हैं। वली मुहम्मद नज़ीर (१७४०-१८३०) उर्दू के सुन्दरतम शायरों में गिना जाता है। उसकी कविताएँ बचपन, गिलहरी, कौये और हिरन-सम्बन्धी और पतंग तथा बुलबुलों की लड़ाई-सम्बन्धी बड़ी मार्मिक हैं। उसकी ज़बान की सादगी उर्दू साहित्य के किसी शायर में नहीं है।

उस काल के अन्य शायरों में प्रधान हैदरअली आतिश, इमामबख़्श नासिख़, अनीस और सलामत अली दबीर हैं।

आतिश प्रकृति का गायक था, नासिख़ लफ्ज़ों का जादूगर था। आतिश उर्दू भाषा के सुन्दरतम लिरिककारों में गिना जाता है। उसने दो दीवान छोड़े हैं जिनमें ४०,००० से ऊपर लाइनें हैं। नासिख़ की नज़्मों की तीन जिल्दों में दफ़्तर-ए-परेशाँ' मधुरतम है।

उर्दू का वर्तमान युग सन् सत्तावन की ग़दर से शुरू होता है। अब तक फ़ारसी का बोलबाला रहा था, उर्दू उसकी चेरी मात्र थी, पर अब वह अपनी ज़मीन पर खड़ी हुई। हिन्दुस्तान की ज़बानों में उर्दू अब हिन्दी के साथ प्रधान ज़बान बनी। अनीस और दबीर की रचनाओं ने ज़ौक़, अमीर, दाग़, हाली, सर सैयद, ग़ालिब और इक़बाल के लिये राह बना दी थी। ग़ालिब और इक़बाल इन सबमें महान् थे। अनीस और दबीर ने ही अधिकतर आधुनिक उर्दू नज़्म को लोकप्रिय बनाया।

मुहम्मद इब्राहीम ज़ौक़ लखनऊ के बाद के दिल्ली-मरक़ज के शायरों में पहला महत्व का शायर था। उसकी अधिकतर रचनायें ग़दर में नष्ट हो गईं फिर भी आज़ाद आदि उसके शार्गिदों की खोज से कोई १०,००० पंक्तियाँ मिल गई हैं। ज़ौक़ ने क़सीदाकारी को आख़िरी मंज़िल पर पहुँचा दिया।

उर्दू कवियों में सबसे महान् असदुल्ला ख़ाँ ग़ालिब (१७९७-१८६०) था। वैसे अधिकतर उसने लिखा फ़ारसी

में पर जो कुछ वह उर्दू में छोड़ गया है वह लामिसाल है। उसके गद्य और पद्य दोनों ही मिलते हैं। दीवान के अतिरिक्त उसके ख़तों की भी दो जिल्दें हैं—'उर्दू-ए-मुअल्ला' और 'ऊद-ए-हिन्दी'।

मुहम्मद मुमीन खाँ मुमीन (१८००-१८५१) ने ज्योतिष और हिकमत पर पुस्तकें लिखी हैं। पर शायर भी वे काफ़ी ऊँचे तबक़ के थे। उन्होंने गज़ल और क़सोदे लिखे। उनका एक मथनवी भी है, 'मथनवी-ए-जिहादिया'।

अमीर अहमद मीनाई और नवाब मिर्ज़ा खाँ दाग़ रामपुर के दरबार के शायर थे। अमीर आलिम थे, दाग़ शायर। अमीर की महारत क़सीदाकारी में थी, दाग़ की लिरिक में। अमीर के दीवानों के नाम थे—'मीरातुल ग़ैब' और 'सनमख़ान-ए-इश्क'। दाग़ के दीवानों के—'गुल्ज़ार-ए-दाग़', 'अफ़्ताब-ए-दाग़,' 'फर्याद-ए-दाग़', 'मेहताब-ए-दाग़', और 'यादगार-ए-दाग़'।

उर्दू के अलीगढ़ी आन्दोलन का केन्द्र सर सैयद अहमद ख़ाँ का मुस्लिम कालेज था, जो बाद में मुस्लिम यूनिवर्सिटी बना। उस आन्दोलन के परिणाम ऊँचे तबक़े के शायर और लेखक हुए। सर सैयद अहमद, नवाब महसिनुल्मुल्क, मौलवी चिराग़ अली, मुहम्मद हुसेन आज़ाद, अल्ताफ़ हुसेन हाली, मौलवी नधीर अहमद, धकाउल्लाह, हस्रत मोहानी और

शिबली नूमानी उन्हींमें थे। हाली के 'मुसद्दस' और 'शेर-ओ-शायरी' प्रसिद्ध हो चुके हैं।

इधर के उर्दू के शायरों में सबसे महान् सर मुहम्मद इक़बाल हो गये हैं। उनकी अधिकतर शायरी दर्शन से संबन्ध रखती है—'बाँग-ए-दिए', 'बालि-जिब्रील', 'जावीद-नामा', 'रमूज़-ए-खुदी', 'दर्बे-कलीम', 'ज़बूर-ए-अजम' उनकी अमर कृतियाँ हैं।

हाल के मरे और जीवित उर्दू शायरों में प्रधान मजाज़, साग़र, फ़ैज़, जोश मलिहाबादी, रघुपति सहाय फ़िराक़, वामिक़, सरदार जाफ़री आदि हैं। इनसे पहले उर्दू के कहानीकारों में सबसे महान् प्रेमचन्द थे जो हिन्दी के भी सर्वोत्तम उपन्यासकार-कहानीकार थे। मंटो का स्थान उर्दू के कहानीकारों में अप्रतिम है। राजेन्द्र सिंह बेदी, कृशन-चन्दर, चग़ताई आदि भी उर्दू के उत्कृष्ट कहानीकार हैं।

हिन्दी और उर्दू में परम्परा के अतिरिक्त बस लिखावट का फ़र्क़ है। उर्दू शायरों की कृतियों को देवनागरी लिपि में करने का अब प्रयास हो रहा है। एक लिपि हो जाने पर हिन्दी और उर्दू सर्वथा समान हो जायेंगी।

१२

कश्मीरी

कश्मीरी बोली का प्राचीन नाम पैशाची है। जैसे भारत की महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि प्राकृतें थीं वैसे ही पैशाची प्राकृत भी थी जो कश्मीर के दून में बोली जाती थी। गुणाढ्य ने अपनी बृहत्कथामंजरी पैशाची में ही लिखी थी। वही अन्य भाषाओं के संपर्क से आज की कश्मीरी है।

कश्मीर सदा से महाकवियों और अलंकार शास्त्रियों का गढ़ रहा है। महाकवि कालिदास, मातृचेट, रुय्यट, कैय्यट, अभिनवगुप्त, कल्हण, बिल्हण, जल्हण, दामोदर गुप्त आदि कश्मीरी ही थे, जिन्होंने संस्कृत की भारती अपनी रचनाओं से भरी।

कश्मीरी भाषा और साहित्य का विकास विशेषतः तेरहवीं-चौदहवीं सदी ईस्वी में हुआ। कश्मीरी साहित्य की प्रातः स्मरणीया गायिका लाल देद चौदहवीं सदी के आरंभ में हुई जब घाटी में मुस्लिम शासन स्थापित हो चुका था और संस्कृत की परम्परा धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थी।

प्राचीन संस्कृत-पैशाची परम्परा के अभाव में और नवीन के आरंभ के पहले स्वाभाविक ही था कि जनता की बोली ही कवियों के गायन और भावों की अभिव्यक्ति का साधन बने। लाल देद ने बस तभी अपनी नई प्रतिभा का परिचय दिया। वह पुरानी परम्परा के निचले छोर पर थी, नई के उपरले छोर पर और उसने पुरानी परंपरा को सर्वथा छोड़ा भी नहीं। उसने कश्मीरी शैव दर्शन की पृष्ठभूमि पर जन-बोली को उतारा और उसमें नये अलंकारों और भावों के अभिराम पट बुनते हुए लौकिक चित्रों को उभारा। लाल देद रहस्यवादिनी थी। उसने पंडित को मन्दिर और पत्थर के प्रतीकों से सावधान किया और नये प्रतिमानों से सत्य को खोजा। कश्मीरी शैव दर्शन के अतिरिक्त उस पर इस्लाम के एकेश्वरवाद का भी प्रभाव था।

आर शरीफ़ का शेख़ नूरुद्दीन लाल देद का समकालीन था, पर उससे उम्र में छोटा। उसका लोकप्रिय नाम नुन्द रिशी (ऋषि ?) था। उसका रिशिनामा कश्मीरी साहित्य में ख़ासा प्रसिद्ध हुआ। उसमें कवि-शक्ति तो इतनी नहीं है, पर नीति काफ़ी है, और उससे कश्मीरी ज़बान को एक विशिष्ट शैली मिली। उस संक्षिप्त शैली में रहस्य की मात्रा काफ़ी है।

तेरहवीं सदी के अन्त या चौदहवीं के आरंभ में शिति-

कण्ठ ने अपना महानय-प्रकाश लिखा। उस काल की दूसरी रचनाओं की तरह यह महानय-प्रकाश भी रहस्यवादी है। इसका सम्बंध वस्तुतः सृजनशील साहित्य से इतना नहीं, जितना भाषा और अलंकार से है। उस काल संसार की सारी भाषाओं में अलंकार-शास्त्र पर ग्रंथ लिखे जा रहे थे। महानय-प्रकाश भी उसी पृष्ठभूमि से उठा। पर उसका महत्व विशेषकर इसलिये है कि वह कश्मीरी भाषा का सबसे पुराना उपलब्ध उदाहरण है।

उन्हीं दिनों रहस्यवादी आधार के बावजूद कश्मीरी कविता में मानव-प्रेम की धारा भी बही। गेय पद विशेष रुचि से लिखे और गाये जाने लगे। इन्हें लोले कहते थे जिसका अर्थ है, प्रेममयी अकुलाहट। लोले में छः से दस पंक्तियाँ तक होती थीं, जिनमें टेक भी शामिल होती थी। कश्मीरी लिरिक अत्यंत मधुर गायन होता है। उसमें टवर्ग आदि का अभाव होता है और भावों की मादकता भाषा की मधुरता पर पेंग मारती है। इन पदों में अद्भुत रस होता है और हृदय को स्पर्श करने वाली उनकी पुकार दिगंत को दर्द से भर देती है। इन पदों की गायिका नारी होती है। वही अपने प्रिय को दर्द-भरी रागिनी द्वारा पुकारती है—वसन्त छाया, फूल खिल गये, कोकिल और पोशिनूल गाने लगीं, पर तू कहाँ है? बोल, ऐसे में भला तू कहाँ है?

प्रकाशराम और हाबा ख़ातून के पद उस दिशा में काफ़ी विख्यात हुए। अधिकतर पद अनजाने कवियों के हैं, लोक कवियों के। पर उनकी पकड़ जनता पर ऐसी रही है कि वे कभी मर न सके और आजतक जीवित हैं। अनेक तो इतने महत्व के माने गये कि उन्हें गज़लों और फ़ारसी गीतों में पिरो लिया गया। आज भी वे पुरानी हस्तलिपियों में जहाँ-तहाँ बिखरे मिल जाते हैं। सोलहवीं सदी की हाबा ख़ातून इन गीतकारों में प्रधान है। थी तो वह गांव के किसान की लड़की पर अपने गीतों के ज़रिये वह तख़्तनशीं हो गई, यूसुफ़शाह की बेगम। उसके गीतों में गहरा दर्द है, एक ऐसी पुकार है जो बियाबाँ को भर देती है। पर्वत और जंगल, फूल और पंछी, और उनमें बसी मुहब्बत की कहानी अँगड़ा-अँगड़ाकर उसके गायनों में उठती है और सुनने वालों को बेबस कर देती है।

दूसरी प्रधान गायिका फ़ारसी के प्रसिद्ध लेखक मुंशी भवानीदास (ल० १८००) की निराश पत्नी अर्नीमाल (पीले गुलाबों का ग़जरा) थी। उसके निराशाजनक फिर-फिर टेर उठाने वाले पद कश्मीरी में काफ़ी लोकप्रिय हुए। जुमरशीद भी अनमोल गायिका थी और मिर्ज़ा अकमालुद्दीन मनहर गायक। कश्मीरी को मुसलमान कवियों का ख़ासा योग मिला और भाषा के अतिरिक्त उस कारण भी फ़ारसी

की अमित काव्य-सम्पदा और कवि-परम्परा उसकी परिधि में आ गई। परन्तु इससे लोक-बोली समृद्ध हुई, उसका रंग नागरिक कृत्रिमता से बिगड़ने न पाया, उसकी त.ज़गी बनी रही। उसके कवियों ने फिर-फिर अपनी घाटी को देखा, अपनी लोक-कथाओं को गुना और अपनी बोली को जनता की टटकी साधों-सनी भावुकता से समृद्ध किया। ख़ाजा हबीबुल्ला नौशहरी (मृ० १६१७) ने तो धार्मिक गायनों तक में लौकिक परम्परा बनाये रखी और रूपा भवानी (१६२४-ल० १७२०) की रहस्यमयी वाणी भी कश्मीरी की भावभूमि न छोड़ सकी।

१८१६ में कश्मीर की घाटी में सिक्ख आये। शान्ति और सुरक्षा का उदय हुआ। अगले १५० साल कश्मीरी के स्वर्ण-युग के थे। उसी काल प्रकाशराम ने अपनी रामायण लिखी, महमूद गामी ने शिरीं-खुसरो और मकबूल शाह ने गुलरेज़। उन्हीं दिनों वलीउल्ला ने 'हिमाल त नाग्राय' लिखा। पौराणिक कथायें भी तब नयी कविता का आनबान लिये आईं और परमानन्द और कृष्ण राज़दाँ ने शिवलगन प्रस्तुत किया। परमानंद ने सुदामा-चरित्र और राधा-सुयंवर भी लिखे, और अनेक गीत, गज़ल, पद भी।

इस काल तक शिक्षित कश्मीरी समाज, हिंदू-मुसलमान दोनों, की साहित्यिक भाषा फ़ारसी हो गई थी। निश्चय

उसने एक हद तक शुद्ध कश्मीरी बोली के साहित्य को कुंठित किया, पर उसकी उस क्षेत्र में देन भी कुछ कम न थी। कश्मीरी कवि फ़ारसी छन्दों का अधिकाधिक उपयोग करने लगे।

महमूद गामी (मृ० १८५५) का जिक्र पहले किया जा चुका है। वह प्रणय-कथाओं का असामान्य रचयिता था। यूसुफ़ और जुलेखा, लैला-व-मजनूँ, शीरीं-ओ-खुसरू उसकी कलम से अनायास निकले और उनको कहानी की काया में उसने अनेकानेक गीत सिरज दिये। उसकी शैली फ़ारसी है, पर उसमें असामान्य काव्य-प्रतिभा है। उसके वर्णन में शक्ति और मिठास है, निःसंदेह यह सच है कि अनेक बार उसकी भाषा चित्र-बोझिल हो उठती है।

मकबूल शाह कश्मीर का प्रसिद्ध रोमांचक छन्दक था। गुलरेज़ लिखी। गुलरेज़ प्रकृति की सुघराई और इन्सानी मुहब्बत की अभिराम कहानी है। ग्रिस्तनामा उसी कवि का लिखा एक कश्मीरी किसान की शरारत और मक्कारी पर व्यंग-काव्य है। अपने गीतों और गज़लों में रसूल मीर मकबूल शाह को लाँघ गया। उसकी शैली में कहीं अधिक निखार है और मुल्की ज़बान अपनी स्वाभाविक मिठास लिये उसमें उतर आई है। वह जैसे गहरे पास बैठकर अपनी कहानी सुनाता है। राम की कथा उसने निजी शक्ति से

लिखी है और कौशल्या का राम के लिये विलाप तो अत्यन्त करुण हो उठा है। ऐसे ही उसकी अन्य अनेक कवितायें भी काफ़ी प्रसिद्ध हुईं। अकेले बेटे की कहानी भी उसने मार्मिक छन्द में 'अकनन्दन' में लिखी है जो करुणा में बेजोड़ है।

बाद के कवियों में अज़ीज़ उल्लाह हक़्क़ानी और वहाब पारे काफ़ी प्रसिद्ध हुए। हक़्क़ानी ने ग़ज़लियाति-हक़्क़ानी लिखी और वहाब ने शाहनामा का फ़ारसी से कश्मीरी में अनुवाद किया। वहाब ने अनेक हृदयस्पर्शी गीत लिखे। जवानी पर लिखी उसकी कविता में ग़ज़ब का आकर्षण है। क़लन्दरशाह, अब्दुल अहदनाज़िम, मोहिउद्दीन मिस्कीं ख़ाजा अक्राम, रहमानदार और मौलवी सिद्दीक़ उल्लाह ने पिछली अपनी रचनाओं से कश्मीरी का भंडार भरा। सिद्दीक़ ने निज़ामी के सिकन्दरनामा का कश्मीरी अनुवाद किया। पहले के गीतों में सादगी और ताज़गी थी। अब उसकी कमी नई कविता ने अपने अलंकरण और उड़ान से पूरी की। फिर भी कश्मीरी कवि फ़ारसी की विरासत लेकर भी अपने फूल-पौधों और पक्षियों को न भूला।

फ़ारसी की रहस्यवादी परम्परा भी इस काल ख़ासी चली। मयख़ाना और प्यालों की परम्परा कश्मीरी को भी फ़ारसी से मिली। अज़ीज़ दरवेश और वहाब ख़ार ने इसी

परम्परा से अपनी कवितायें सजाईं। इस काल एक विशेष प्रकार का नृत्य-गीत, जिसे रोह्व कहते थे, और जो प्राचीन काल से ही चले आते थे, बड़ी लगन से विकसित किये गये। उनके विशेष रचयिता महमूद ग़ामी, मकबूलशाह आदि थे। फ़स्ल कटने पर या दूसरे त्यौहारों के अवसर पर साँझ को गरोह बनाये बहुयें और कुमारियाँ दो पाँतों में इन्हें गा-गाकर नाचती थीं।

शासन के कष्ट ने भी अनेक कवियों को एक नई सूझ दी। सामाजिक और आर्थिक परेशानियों ने कवियों को व्यंग और प्रहसन लिखने को मजबूर किया। लाल लखमन इसी प्रकार की पटवारी के कारनामों पर प्रकाश डालती व्यंग-भरी कविता है। इनके अतिरिक्त कश्मीरी में अनेक अन्य प्रकार के गीत हैं जैसे विवाह के गीत, घरेलू गीत, ढोर चराने के गीत, मौत के गीत। कश्मीरी कविता का एक रूप परमानन्द और उसके परिवार के अन्य कवियों ने सँवारा। उसे लीला कहते हैं। लीला-कवितायें कृष्ण-संबन्धी हैं और जितना उल्लास और अलहड़पन उनमें है उतना दूसरी कश्मीरी कविताओं में नहीं है। शिव के नृत्य में इनका विशेष प्रयोग हुआ। परमानन्द (मृ० १८७९) ने तीन प्रबन्ध-काव्य भी लिखे—शिव-लगन, राधासुयंवर और सुदामाचरित्र। इनमें अद्भुत प्रवाह और मिठास है, विशेषकर सुदामाचरित्र

तो कश्मीरी साहित्य में सुथरी शैली और कहानी-विन्यास में बेजोड़ है। उस कवि की प्रसिद्ध यात्रा-कविता अमरनाथ-यात्रा, जो अमरनाथ का वर्णन करती है, दृश्यों के अंकन में बड़ी समर्थ है। उस कवि ने अनेक लीला-कवितायें लिखीं जो उस साहित्य में आदर की वस्तु बनीं।

लक्ष्मन जू परमानन्द के शिष्यों में से थे, लीला-कविताओं के मधुर गायक। परमानन्द के प्रसिद्ध काव्य राधा-सुयंवर का मोहिनी वाला आकर्षक स्थल लक्ष्मन जू का ही रचा हुआ है। उनका अपना नल-दमयन्ती काव्य स्वयं काफ़ी प्रसिद्ध हुआ। लीला-कवियों में एक दूसरा समर्थ गायक वनपोह के कृष्ण राज़दाँ हुए। उनकी लीला-कवितायें बड़ी सरल और सरस हैं। उनमें रहस्य का अनावश्यक बोझ नहीं है।

नया युग

नया युग भी कश्मीरी साहित्य में बड़े आनबान के साथ आया। इस नये युग की नयी धाराओं के स्रष्टा गुलाम अहमद महजूर हैं। गाँव की लड़की, मेरी जवानी, उठो ओ माली, और मेरा मुल्क चमन है, आदि अपनी कवितायें महजूर ने नये अन्दाज़ से गाईं। रांगर के अब्दुल अहद आज़ाद ने अपनी गज़लों में आज़ादी की आवाज़ बुलन्द की। दयाराम गंजू ने नीतिपरक कविताएँ रचीं। ज़िन्दा कौल

को कविताओं ने कश्मीरी काव्य को एक नई दिशा दी। मनुष्य की आत्मा ने जैसे उनमें कुछ सवाल पूछे। पर नई राजनीतिक समस्याओं ने जो ग़रीब कश्मीरी किसानों-मजदूरों को झिंझोड़ा तो सामाजिक निष्ठा से भरे कवियों ने लेखनी उठाई। नादिम उसी नई परम्परा का गायक है, उस परम्परा को बढ़ाने और समर्थ बनाने वाला।

कश्मीरी गद्य का कलेवर छोटा है। फिर भी उसके लोक-गीतों की काया इतनी छोटी भी नहीं। शाहाबाद के शंगी ने लैला और रुस्तम की कहानियों पर आकर्षक कथायें लिखी हैं। गद्य की परिधि में अनेक अन्य कथायें प्रचलित हैं, जैसे वज़ीरमाल, लालमाल, शाह सयार, शशमन ठग। इंजील और कुरान आदि के कुछ अनुवाद भी कश्मीरी भाषा में अब उपलब्ध हैं। कश्मीरी नाटक-साहित्य नहीं के बराबर है। कुछ हिन्दी धार्मिक नाटकों के रूपान्तर ज़रूर उपलब्ध हैं, पर वे मौलिक नहीं हैं। पर इधर हाल में राज-नीतिक आन्दोलन के साथ-साथ जो साहित्यिक प्रयास हुए हैं उनका मान निश्चय कुछ कम नहीं है। कविता, नाटक, एकांकी, कहानी, निबन्ध सभी को आज के कश्मीरी साहित्यकारों ने एक साथ सामाजिक, आर्थिक और राज-नीतिक शोषण के विरुद्ध अस्त्र बनाया है। पाकिस्तानी हमले और कश्मीर के भारत में शामिल होने के विषय बार-बार नई और शक्तिमान् लेखनी के आधार बने हैं।

१३

पंजाबी

पंजाबी प्रायः डेढ़ करोड़ जनता की ज़बान है। यह जनता अब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बँट गई है, पर है यह अब भी पाकिस्तान की जनता की भाषा। यद्यपि पाकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा उर्दू बना दी गई है पर जनता की बोलचाल की भाषा वहाँ अभी तक पंजाबी ही है। पंजाबी को हिंदू, मुसलमान, सिक्ख सभी ने बढ़ाया है। सिक्खों की तो धार्मिक ज़बान भी वही रही है और उनके धार्मिक ग्रंथ गुरु-ग्रंथ-साहब के अनेक अंश उसीमें और पंजाबी लिपि गुरमुखी में लिखे हैं। पंजाबी की उत्तरी मध्य-वर्ती और पच्छिमी शाखाओं ने साहित्यिक शैलियाँ विकसित कीं।

पंजाबी साहित्य बहुत समृद्ध नहीं है यद्यपि उसमें दूसरी प्रादेशिक भाषाओं की तरह ही लोक-कथाओं और लोक-गीतों की कमी नहीं है। उस भाषा को विशेष मर्यादा सिक्खों ने उसे अपनी धार्मिक ज़बान बना कर दी। एक

काल तक सिक्ख उन्नीसवीं सदी के बीच पंजाब की राजनीति पर हावी रहे, तब उन्होंने अपनी राजकीय भाषा भी पंजाबी को ही बनाया। बाद में भी सिक्ख-रियासतों ने उसे विशेष आदर दिया और आज तो पंजाबी भाषा-भाषियों का अलग सूबा बनाने का आन्दोलन भी चल रहा है।

पंजाबी साहित्य का जन्म और विकास सिक्खों की ही सक्रिय साधना से हुआ। पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी में गुरु नानक हुए, जिन्होंने सिक्ख-सम्प्रदाय की स्थापना की। अपनी शिक्षा का माध्यम उन्होंने पंजाबी को ही बनाया। सिक्खों का धर्म अभिजात नहीं, जनता का था और उसके प्रचार के लिये जनता की ज़बान की ही आवश्यकता थी। उसी ज़बान को पंजाबी के गुरु नानक ने इस्तेमाल जनता तक अपनी आवाज़ पहुँचाने के लिये किया। आदि-ग्रन्थ पंजाबी का पहला महान् ग्रन्थ है, पर उसकी भाषा इतनी हिंदी-बोझिल है कि वह हिंदी की ही एक शैली-सी लगती है। इसका एक विशेष कारण था। गुरु नानक संतों की परम्परा में हुए थे। निर्गुण संतों का उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा था, इससे यह संभव न था कि उनपर संतों की वाणी का प्रभाव न पड़ता।

आदि-ग्रन्थ में ३,३८४ पद हैं और इनको ३१ रागों में बाँट दिया गया है। भगवान की भक्ति और गुरु में अचल

विश्वास ही इन पदों की टेक है। अनेक बार इनके चित्रण अलंकारों और उपमाओं के योग से अत्यन्त आकर्षक बन गये हैं। आदि-ग्रंथ का संग्रह सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन (१५६३-१६०६) ने प्रस्तुत किया। उसमें गुरु नानक, उनके बाद के गुरुओं, स्वयं अर्जुन और अन्य संतों की बानियाँ और पद एकत्र कर लिये गये।

दसम-ग्रंथ में सिक्खों के अंतिम गुरु गोबिंद सिंह (१६६६-१७०८) और उनके दरबार के कवियों के पद संग्रहीत हैं। यह संग्रह १७२१-३७ के बीच मनीसिंह ने तैयार किया। दसम-ग्रंथ की भाषा और छंद हिंदी हैं। एक-मात्र चंडी-सम्बंधी पद 'चण्डी दी वार' पंजाबी में है। इस ग्रंथ में अधिकतर हिंदू पुराणों और परम्परा की कथायें दी हुई हैं, इससे यह इतना पवित्र नहीं माना जाता।

प्राण-संगली में योग-सम्बंधी कथोपकथन है जो साधारणतः गुरु नानक की रची मानी जाती है। इसी प्रकार गुरु गोबिंदसिंह का लिखा भगवद्गीता का एक छंदशः अनुवाद भी गोबिंद-गीता नाम से प्रसिद्ध है। प्रेम-अबोध में अनेक रूपकों और कथाओं द्वारा दोहों में प्रेम का सिद्धांत बखाना गया है। यह सब आदि ग्रंथ के ही अंग हैं, जिनमें जैदेव, नामदेव, रविदास, कबीर और फ़रीद के भी पद हैं।

गुरदास के लिखे कुछ 'वार' है, लम्बी कवितायें, जिन-

में सिक्ख-धर्म के उपदेश उदाहरणों-उपमाओं सहित निरूपित हैं। जनम-साखी भी धार्मिक साहित्य के ही अङ्ग हैं। उनका संबन्ध गुरु नानक के जीवनचरित से है। बाला, सेवासिंह, मनीसिंह तीनों ने जनम-साखियाँ लिखीं। जनम-साखियाँ गद्य में लिखी हैं और पंजाबी गद्य के प्रारम्भिक नमूने प्रस्तुत करती हैं।

पंजाबी साहित्य के प्रधान निर्माता शुरू में मुसलमान थे। सिक्खों की भाँति उन्होंने भी पंजाबी में ही अपने धर्म-ग्रन्थ लिख डाले। उन्हींके जरिये उन्होंने मुसलमानों में प्रचार-कार्य किये। अब्द, अब्दी या आशी नाम से लिखने वाले अब्दुल्लाह ने सत्रहवीं सदी के मध्य धार्मिक विश्वासों और कर्तव्यों पर अपना बारा-अन्वा लिखा। पिछली सदी में प्रायः ८,००० शेरों में अन्वा-बारकुल्ला लिखा गया। वर्तमान सदी के शुरू में गुलाम हुसेन ने मुसलमानों की दयनीय हालत पर अपने नूरे-हिदायत में विचार किया। पंजाबी में लिखे अनेक मेराज़नामा (मुहम्मद साहब का बिहस्त जाना) भी मिलते हैं। इसी प्रकार धार्मिक युद्धों का वर्णन करने वाले अनेक जंगनामा भी हैं। हामिद का अठारहवीं सदी में लिखा जंगनामा विशेष लोकप्रिय है। उसमें ५,६२० पंक्तियाँ हैं और उसका नारियों का विलाप वाला प्रसंग अत्यन्त करुण है।

यूसुफ़ और जुलेख़ा की कहानी भी पंजाबी का लोकप्रिय प्रसंग रही है। अब्दुल हकीम बहावलपुरी, गुलाम रसूल और हबीब अली ने अपने-अपने तरीके से यह कहानी रची। हबीब अली की कहानी में तो ३६,००० पंक्तियाँ हैं। सूफ़ी कविताएँ भी पंजाबी में ख़ासी हुईं। फ़रीद की कविताएँ तो आदि-ग्रन्थ में ही संगृहीत हैं, प्रसिद्ध सूफ़ी कवि बुल्हेशाह के क़ाफ़ी भी बहुत प्रसिद्ध हैं। अली हैदर ने भी सूफ़ी मत की अनेक सीहर्फ़ी लिखीं।

'लव कुश दियाँ पौड़ियाँ' पुरानी पंजाबी की इनी-गिनी रचनाओं में है। उसमें पिता के साथ लव-कुश की लड़ाई का वर्णन है। सत्रहवीं सदी के बीच जसोदानंदन ने उसे लिखा। उसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत और भगवद्गीता अनेक प्रकार से पंजाबी में अनूदित हुए।

हीर-राँझा के गीत सारे पंजाब में गाये जाते हैं। हीर झंग के मुखिया की बेटी थी। और राँझा दूसरे गाँव के मुखिया का बेटा। दोनों में प्रेम हो गया। पर हीर की शादी उसके पिता ने किसी और से कर दी। राँझा फ़कीर हो गया। कहानी की लोकप्रियता ने उसे अनेक रूप दे दिये हैं। एक के अनुसार हीर अपने निषिद्ध प्रेम के कारण मार डाली गई। दूसरे के अनुसार दोनों प्रेमी निकल भागे और

जीवन भर सुख से रहे। अकबर के ज़माने से ही लगातार लम्बी-लम्बी कविताएँ उस प्रसंग में लिखी जाती रही हैं। दामोदर मुक़बिल, वारिस शाह सभी ने उसे अपनी-अपनी प्रतिभा से लिखा। वारिस शाह पंजाबी का सबसे सुंदर कवि है। उसकी शैली बड़ी तीखी है और उसके वर्णन में पंजाबी जीवन उछला पड़ता है। साहबा और मिर्ज़ा, और सोहनी और महीवाल दोनों की कथायें अत्यंत करुण हैं। दोनों बड़ी लोकप्रिय हैं जिससे उनके अनेक रूप बन गये हैं। अनेक गीत इन कथाओं पर बने हैं। और बड़े शौक से पंजाबी में गाये जाते हैं। लम्बे वारों में अनेक अन्य ऐतिहासिक और दूसरी कथायें भी कही गई हैं। निजाबत, अग्रा सेथी, अडूरराय, हिदायत उल्लाह, ईशरदास, किशनसिंह आरिफ़, मोहम्मद बूता आदि उस क्षेत्र के जाने हुए साहित्यकार हैं।

आधुनिक काल

पंजाबी का आधुनिक काल बीसवीं सदी में आरम्भ होता है। इस काल की काव्य-धारा का आरम्भ वीरसिंह ने 'राना सूरतसिंह' काव्य लिखकर किया। पर शीघ्र वीरसिंह के अध्यात्म को पीछे कर पूरनसिंह ने मानवीय पार्थिव विषयों को अपनाया। १९२३ और १९२५ में उसकी कविताओं के संग्रह 'खुले छन्द' और 'खुले मैदान' नाम से

प्रकाशित हुए। इनसे दो-तीन साल पहले किरपा सागर का ऐतिहासिक काव्य, लक्ष्मी देवी प्रकाशित हुआ। धनीराम ने फिर अपनी कविताओं हिमाला, गंगा, और रात में कल्पना के क्षेत्र में ऊँची उड़ान ली, और अपने कोरा क़ादिर में भगवान को भिन्न-भिन्न मजहब बनाने के लिये धिक्कारा।

नाटक पंजाबी में हिन्दी-अंग्रेजी अनुवादों से शुरू हुए। नन्दा ने अपनी 'सुभद्रा' में पुरानी रूढ़ियों की अच्छी खिल्ली उड़ाई। 'पूरब ते पच्छम' में इसी प्रकार गुरबख्शसिंह ने यूरोपीय संस्कृति का मज़ाक उड़ाया। नाटकों के अतिरिक्त कुछ एकांकी भी पंजाबी में लिखे गये। पर विशेष सफल नहीं हुए।

उपन्यासकारों में अग्रणी नानकसिंह हुए, जिन्होंने 'चिट्टा लहू' और 'ग़रीब दी दुनिया' लिखकर ग़रीब-अमीर और पूँजी और मजूरी के अन्तर व्यक्त किये। उसी उपन्यासकार ने कहानियाँ भी लिखीं। करीब सौ कहानियाँ नानकसिंह की आज उपलब्ध हैं। करतारसिंह की कहानियों में मनोविज्ञान की झलक ख़ासी होती है। गुरबख्शसिंह की शैली बड़ी मँजी हुई और सुधारवादी है।

पूरनसिंह और गुरबख्शसिंह ने निबंध भी सुन्दर लिखे, पर उस क्षेत्र में अधिक ख्याति तेजासिंह ने अपनी शैली से अर्जित की।

वर्तमान युग के कवियों में प्रधान किरपासागर, प्रीतमसिंह सफ़ीर, अवतारसिंह आज़ाद, दीवानसिंह कालापानी, चननसिंह जल्थूवालिया, देविन्दर (देवेन्द्र) सत्यार्थी, बावा-बलवन्त, डा० गोपालसिंह, हरिंदरसिंह रूप, ईश्वरसिंह, सुरिन्दरसिंह कोहली, संतोखसिंह धीर, प्यारासिंह सेहराई, तेजासिंह सबर और अहमद राही हैं। कवियित्रियों में प्रमुख अमृता प्रीतम और पभजोत कौर हैं। अमृता प्रीतम ने पंजाबी में अत्यंत सुन्दर गीत और कवितायें लिखी हैं। उनका 'अज आखाँ वारिस शाह नूँ' का तो पंजाबी कविता-क्षेत्र में साका चल गया है।

पंजाबी उपन्यास और कहानियों में पहला विशिष्ट कदम नानकसिंह ने उठाया। गुरबख्शसिंह तो बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं ही, इस क्षेत्र में भी उनका बोलबाला रहा। पंजाबी के प्रधान उपन्यासकार नवतेजसिंह, कुलवन्तसिंह विर्क, सुरिंदरसिंह, सज्जाद हैदर, संतसिंह सैखों, करतारसिंह दुग्गल और अमृता प्रीतम हैं। करतारसिंह दुग्गल तो हिंदी के भी जाने हुए कहानीकार हैं। अमृता प्रीतम के दो उपन्यास—पंजर और डा० देवराज—हिन्दी वाले के जाने हुए हैं। जसवंतसिंह कँवल, नरिंदरपालसिंह और सुरिन्दरसिंह कोहली ने भी इस क्षेत्र में सफल प्रयत्न किये हैं।

पंजाबी नाटक-क्षेत्र को सन्तसिंह सैखों, गुरबख्शसिंह,

अमरीकसिंह, रोशन लाल अहूजा और बलवन्त गार्गी ने भरा-पुरा है। वैसे उस दिशा में फ़िरोज़दीन शर्फ़, बावा बुधसिंह, बृजलाल शास्त्री, हरचरनसिंह, बावा बोहरसिंह और गुरुदयालसिंह खोसला के प्रयास भी सराहनीय हैं।

पंजाबी में दूसरे विषयों पर लिखने वाले प्रधानतः निम्नलिखित हैं—प्रिंसपल तेजासिंह, प्रो० गंडासिंह, कपूरसिंह, खुशवन्तसिंह, बावा बुधसिंह, प्रेमसिंह होती, डा० मोहनसिंह दीवाना, डा० बनारसी दास, लालसिंह, प्रो० अमरसिंह, प्रिंसपल जोधसिंह, प्रो० गंगासिंह और प्रो० साहिबसिंह। इन कृतिकारों ने विशेषतः इतिहास, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर लिखा है।

उर्दू और हिन्दी का प्राधान्य होने से पंजाबी के लेखक धीरे-धीरे उर्दू के साहित्यकार हो गये। मंटो, राजेन्द्रसिंह बेदी, बलवंतसिंह ने उर्दू में ही अधिकतर लिखा। हिंदी को भी अनेक पंजाबी लेखकों का योग मिला है। आज हिंदी के अनेक प्रसिद्ध लेखक पंजाबी हैं। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, देवेन्द्र सत्यार्थी, हंसराज रहबर, अमृता प्रीतम, गुरुदत्त आदि पंजाबी ही हैं जिनसे हिंदी का हित हुआ है।

१४

संस्कृत

संस्कृत साहित्य को साधारण तौर पर दो बड़े भागों—धार्मिक और लौकिक—में बाँटा जा सकता है। धार्मिक साहित्य में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, धर्मशास्त्र, दर्शन और पुराण आते हैं; लौकिक में काव्य, नाटक आदि। संस्कृत साहित्य का काल-प्रसार प्रायः तीन हज़ार साल रहा है और आज यद्यपि हम उसे बोलते-लिखते नहीं, देश का अधिकतर धार्मिक जीवन उससे बँधा हुआ है। हिन्दुओं के धर्म-कार्य आज भी उसी भाषा में होते हैं; विवाह, श्राद्ध आदि सभी संस्कार। संस्कृत भाषा को इसी धर्म की भाषा होने के कारण कहते भी देव वाणी हैं।

१

धार्मिक साहित्य में प्रधान वेद हैं। 'वेद' शब्द का मतलब है, ज्ञान, पवित्र ज्ञान। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये चारों संहितायें कहलाते हैं

क्योंकि ये पहले के बनाये मन्त्रों के संग्रह हैं। इन चारों में सबसे महत्व का ऋग्वेद है। सामवेद में ७५ सूक्त छोड़कर बाकी सभी ऋग्वेद से लिये गये हैं, यजुर्वेद का प्रायः सारा मन्त्र-भाग उसीका है और अथर्ववेद में भी ऋग्वेद के अनेक मन्त्र हैं। ऋग्वेद दस मंडलों और १०२८ सूक्तों और १०,६०० मन्त्रों में बँटा है। सूक्त मन्त्रों के समूह को कहते हैं। ऋग्वेद के ही अधिकतर मन्त्र यज्ञ में काम आने वाले यजुर्वेद में इकट्ठे कर लिये गये हैं और जो यज्ञ में गाये जाते थे उन्हें सामवेद में एकत्रकर लिया गया है। ऋग्वेद के मन्त्र जिन देवताओं की स्तुति में कहे गये हैं उनमें प्रधान वरुण, इन्द्र, सोम, सूर्य आदि हैं। उषा के प्रति भी कुछ अद्भुत सुन्दर मन्त्र कहे गये हैं। वेदों को श्रुति भी कहते हैं, वह इसलिये कि तब अभी लिखकर पढ़ने की चलन न थी, रटकर मन्त्र याद कर लिये जाते थे। पिता या गुरु मन्त्र बोलते थे पुत्र या शिष्य सुनकर याद कर लिया करते थे।

धार्मिक वैदिक साहित्य का पिछला भाग उत्तर वैदिक कहलाता है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रंथ हैं। ये तीनों अधिकतर किसी न किसी वेद से जुड़े हुए हैं। ब्राह्मण गद्य में लिखे हैं जो या तो प्राचीन वैदिक मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करते हैं या यज्ञादि की विधियों पर प्रकाश डालते हैं। इनमें प्रधान ऐतरेय और शतपथ हैं। आरण्यकों का

ज्ञान जंगल के एकान्त में विचारा और दिया जाता था, इससे उनका यह नाम पड़ा। इनमें प्रधान ऐतरेय; आरण्यक आदि हैं।

उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा का विवेचन है। दर्शन का वे आरम्भ करते और जीव, जगत् आदि के स्वभाव पर विचार करते हैं। वे वैदिक ज्ञान के अन्त में आते हैं इससे उन्हें वेदान्त भी कहते हैं। उपनिषदों की संख्या सैकड़ों में है, वैसे ग्यारह प्रधान माने जाते हैं और उनमें भी महत्व के बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कौषीतकि, ईश, कठ, केन, मुण्डक, माण्डुक्य आदि हैं।

वेदांग छः हैं—शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और व्याकरण। ये वस्तुतः वेद के अंग तो नहीं हैं पर उनको सही-सही पढ़ने और समझने के साधन हैं, इससे इनको पढ़ना भी आवश्यक माना जाता था। शिक्षा शब्दों के उच्चारण और निरुक्त उनकी बनावट, अर्थ आदि से सम्बन्ध रखता था; छन्द मन्त्रों की बनावट, छन्द आदि से; ज्योतिष यज्ञादि की विधियों, तिथियों आदि से; व्याकरण मन्त्रों की भाषा से और कल्प यज्ञों-संस्कारों आदि से। वेदांग अधिकतर सूत्र-शैली में लिखे हैं। सूत्र थोड़े से थोड़े सटे शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ प्रगट करते थे। वे सूत थे जिनसे भेद का भाव खुलता था। एक-एक मात्रा बचा लेने में सूत्रकार पुत्र-

जनन का सुख मानते थे। बड़ी कठिन शैली थी यह पर जब लिखना कम होता था तब याद करने की आसानी से वैदिक साहित्य के निर्माण के बाद इसी सूत्र-शैली का अधिकतर संस्कृत में विस्तार हुआ।

निरुक्त संसार के सबसे पहले कोष थे जो आज से ढाई हजार साल पहले लिखे गये। सबसे महान् निरुक्तकार यास्क थे। ज्योतिष का सम्बन्ध नक्षत्रों की गति और गणित से था। बाद में यूनानी और उसके ज़रिये बाबुली, ताजिकी आदि ज्योतिष भी इस वेदांग में जोड़ लिये गये। व्याकरण संस्कृत का जितना वैज्ञानिक है, उतना संसार की किसी भाषा का नहीं। उस क्षेत्र की सबसे महान् रचना पाणिनि की अष्टाध्यायी है। उस पर कात्यायन ने अपना वार्तिक लिखा और पतंजलि ने अपना महाभाष्य। बाद में भी लगातार व्याकरण बनाने की परम्परा चलती रही।

कल्प-सूत्रों का अपना एक साहित्य बन ही गया है। ये तीन प्रकार के हैं—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्रों म यज्ञों का विधान है; गृह्यसूत्रों में गृहस्थ के कर्त्तव्यों और संस्कारों का और धर्मसूत्रों में धार्मिक और लौकिक आचार और क़ानून का, वर्णाश्रम धर्म और दाय-विरासत का, न्याय, अपराध और दण्ड का। धर्मसूत्रों के आधार पर ही स्मृतियाँ बनीं जिनमें मनु और याज्ञवल्क्य प्रधान हैं।

वेदों को श्रुति कहते हैं—जो सुने गये; और जो सुनकर याद रह गया उसे स्मृति कहते हैं। इससे स्मृतियों को श्रुतियों के सर्वथा अनुकूल होना चाहिये।

प्रगट है कि यद्यपि इन वेदांगों का आरम्भ वेदाध्ययन की सहायता के लिये हुआ, ये स्वतन्त्र रूप से नये क्षेत्रों में विकसित होते गये और अन्त में सर्वथा वैज्ञानिक और लौकिक हो गये। बाद में तो अर्थशास्त्र (कौटिलीय), काम-सूत्र (वात्स्यायन) आदि भी बने जिनका सम्बन्ध शासन और संपत्ति तथा काम-विज्ञान से था।

भारतीय दर्शन का आरम्भ तो वेदों में ही हो गया था, पर उसका विशेष चिन्तन उपनिषदों में हुआ और वह पका व्यवस्थित दर्शनों के सिद्धान्तों में। अनीश्वरवादी चारवाकों, जैनों और बौद्धों के दर्शनों के अतिरिक्त हिन्दुओं के दर्शन छः हैं, जो प्रायः सभी प्रारम्भ में, बीज रूप में, अनीश्वरवादी हैं। ये ह—जैमिनि का पूर्वमीमांसा, बादरायण का उत्तर-मीमांसा, कपिल का सांख्य, पतंजलि के योगसूत्र, कणाद का वैशेषिक और गौतम के न्यायसूत्र।

इस दर्शन-साहित्य में ही श्रीमद्भगवद्गीता की भी गणना है। समन्वित दर्शन का यह अपूर्व ग्रन्थ है और परिणाम की भावना छोड़कर कर्मयोग की अनूठी प्रेरणा देता है। इसी से इस देश की जनता का आज हजारों वर्ष

से यह अत्यन्त प्रिय रहा है।

संस्कृत के धार्मिक साहित्य का अंतिम अंग पुराण हैं। इनमें देश का प्राचीन इतिहास भी समाहित है। इतिहास-पुराणों का उल्लेख अथर्ववेद तक में है। पुराण—यानी पुराना—नाम से भी प्रगट है कि यह साहित्य पुराना होगा, पर जिस रूप में आज हम पुराणों को पाते हैं वे बाद में लिखे गये, शायद आज से कोई डेढ़ हजार साल पहले, गुप्त-राजाओं के काल में। इससे यह भी प्रगट है कि उनसे पहले कोई मूल पुराण भी था जिसका सम्पादक परम्परा वेदों के सम्पादक (संहिताकार) और महाभारत के रचयिता व्यास को मानती है।

पुराणों में सृष्टि, प्रलयान्तर सृष्टि, ऋषियों और राजाओं की वंश-तालिकाओं का वर्णन है। हमारे जीवन की अधिक-तर परम्परायें उन्हींमें मिलती हैं। आज का हमारा हिन्दू-जीवन अधिकतर उन्हीं पर अवलंबित है। हम आज वेदों का नहीं पुराणों का जीवन ही जीते हैं। उन्हींके देवी-देवताओं का, उन्हींके विश्वासों-आदर्शों का। पुराण अट्ठारह माने जाते हैं। इनमें प्रधान अग्नि, विष्णु, वायु, मार्कण्डेय और भविष्य हैं।

२

लौकिक साहित्य के प्रधानतः दो भाग हैं—काव्य और

नाटक। वस्तुतः नाटक भी काव्य के अन्तर्गत ही माने जाते हैं। ऐसे ही अच्छे गद्य को भी काव्य ही मानते हैं। जो रसभरा वाक्य है वह काव्य ही है। इसी दृष्टि से बाण और दण्डी प्रधानतः गद्य लिखने वाले होकर भी कवि माने गये हैं।

हम यहाँ लौकिक काव्य-साहित्य के भी दो भाग करेंगे—प्राचीन महाकाव्य और पिछले युगों के काव्य-नाटक। प्राचीन महाकाव्यों में प्रधान रामायण और महाभारत हैं। ये दोनों ईसवी-सदी के आरम्भ के प्रायः पहले ही बन चुके थे। रामायण में राम-सीता की कथा है, रावण-वध की, और महाभारत में कौरव-पाण्डवों के युद्ध की। महाभारत का बीज-भाग तो निश्चय अट्ठारह दिनों के युद्ध की वार्ता उपस्थित करता है पर वास्तव में वह एक प्रकार का पुराण ही आज बन गया है, जिसमें हजारों प्राचीन कथायें दी हुई हैं। जब यह केवल युद्ध-भाग मात्र था तब इसका नाम 'जय' था, फिर बढ़कर यह 'भारत' और अन्त में 'महाभारत' कहलाया। अब इसमें एक लाख श्लोक हैं, इससे इसका दूसरा नाम 'शतसाहस्री-संहिता' भी है। इसी महाभारत में भारतीय दर्शन का अपूर्व ग्रन्थ 'भगवद्गीता' है। रामायण और महाभारत की कहानियाँ पुराणों की ही भाँति हमारे कवियों के प्रबन्ध-काव्यों और नाटकों में प्रस्तुत

घटनाओं के लिये आकर सिद्ध हुई हैं। कालिदास ने अपना रघुवंश रामायण और शाकुन्तल महाभारत के आधार पर लिखी। रामायण वाल्मीकि और महाभारत व्यास की रचना मानी जाती है।

वाल्मीकि और व्यास के बाद का काव्य-काल ईसा की प्रारंभिक सदियों से शुरू होता है। उस काल के आकाश में सबसे देदीप्यमान् नक्षत्र ब्राह्मणी सुवर्णाक्षी का पुत्र अश्वघोष है। अश्वघोष दार्शनिक, भिक्षु और कवि था। उसने बुद्ध की कथा के प्रचार के लिये 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य लिखे। बुद्धचरित में बुद्ध की कथा है, और सौन्दरनन्द में बुद्ध के सौतेले भाई नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी की कथा। अश्वघोष ने कालिदास को इतना प्रभावित किया कि उस महाकवि ने बुद्धचरित के कई श्लोक अपने काव्यों 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' में दुहराये। अश्वघोष कुषाणराज कनिष्क के समय ईसा की पहली सदी में हुआ। उसकी कृतियाँ इतनी लोकप्रिय थीं कि वे मध्य एशिया तक की हिन्दू और बौद्ध बस्तियों में पढ़ी जाती थीं। उसके वहाँ कुछ नाटकों के टुकड़े भी मिले हैं जिनसे प्रगट होता है कि वह नाटककार भी था।

अश्वघोष के प्रायः दो सौ साल बाद संस्कृत का पहला प्रसिद्ध नाटककार भास हुआ। जिसके प्रधान नाटक

'स्वप्नवासवदत्ता', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'चारुदत्त' आदि हैं। इनमें चारुदत्त को बदल-बढ़ाकर बाद में शूद्रक ने अपना हास्य-नाटक 'मृच्छकटिक' लिखा जिसमें उसने ब्राह्मण को चोर और वेश्या को नायिका बनाया।

इसी बीच बौद्ध ग्रन्थ 'अवदानशतक' और आर्यसूर की 'जातकमाला' संस्कृत में लिखे गये। यही काल संस्कृत में शिला और स्तंभों पर लिखे सुन्दर राजकीय प्रशस्तियों और अभिलेखों का है। सुन्दरतम प्रशस्ति-कवि हरिषेण और वत्समही हुए। हरिषेण कालिदास से कुछ पहले हुआ और वत्समही कुछ बाद।

पाँचवीं सदी ईसवी में संस्कृत का सबसे महान् कवि और नाटककार कालिदास हुआ। उसने चार काव्य लिखे, तीन नाटक। 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' उसके दो महाकाव्य हैं, जिनमें क्रमशः सूर्यवंश और शिव-पार्वती की कथा कही गई है और जिनमें क्रमशः उन्नीस और आठ सर्ग हैं। 'मेघदूत' अद्भुत मधुर खण्ड-काव्य है जिसने देशी-विदेशी अनेक कवियों को प्रभावित किया है। 'ऋतुसंहार' कवि का छोटा प्रारंभिक काव्य है जिसमें छओं ऋतुओं का वर्णन है। कालिदास की उपमायें तो प्रसिद्ध हैं ही, उसके काव्यों का-सा रस अन्यत्र कहीं नहीं। कालिदास के नाटक तीन हैं—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञान

शाकुन्तल। शाकुन्तल का चमत्कार संसार भर के ग्रालोचकों ने माना है।

कालिदास की ही भाँति विख्यात महाकाव्य लिखने वाले कवि भारवि, माघ ग्रौर श्रीहर्ष हैं। भारवि ने किरा-तार्जुनीय लिखा, माघ ने शिशुपालवध ग्रौर श्रीहर्ष ने नैषधचरित लिखा। भारवि छठी सदी ईसवी के ग्रन्त में हुए ग्रौर उनके काव्य में ग्रर्जुन ग्रौर शिव का युद्ध वर्णित है। माघ ने ७०० ई० के लगभग महाभारत के ग्राधार पर कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा ग्रपने महाकाव्य में लिखी। बारहवीं सदी में कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरबार में श्रीहर्ष ने ग्रपना नल-दमयन्ती संबन्धी महाकाव्य 'नैषध-चरित' रचा।

संस्कृत काव्य की यह मधुर परम्परा इन कवियों के ग्रागे-पीछे ग्रौर बीच-बीच में भी चलती रही। बंगाल के कवि जयदेव ने बारहवीं सदी में ग्रपना ललित गेय वैष्णव-काव्य 'गीतगोविन्द' लिखा। इस परम्परा का पिछले काल में सबसे पंडित ग्रौर महान् कवि शाहजहाँ का समकालीन पण्डितराज जगन्नाथ हुग्रा जिसकी रचना 'गंगालहरी' ग्रमर कृति है।

नाटकों की परम्परा में भास ग्रौर कालिदास के बाद राजा हर्षवर्धन का नाम ग्राता है। हर्ष बाण, मयूर, मातंग-

दिवाकर आदि कवियों का संरक्षक तो था ही, वह स्वयं भी कुशल नाटककार था। उसने 'नागानन्द', 'प्रियदर्शिका,' और 'रत्नावली' नाम के तीन नाटक लिखे।

कालिदास के बाद संस्कृत साहित्य का सबसे महान् नाटककार भवभूति हुआ। उसने तीन नाटक लिखे—'मालतीमाधव' 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित'। मालतीमाधव में माधव का मालती के प्रति अनुराग प्रदर्शित है, महावीर चरित में रामायण की कथा है और उत्तररामचरित में सीता-परित्याग का अत्यन्त शालीन और करुण चित्रण है।

राजनीतिक नाटक लिखने में विशाखदत्त बड़ा सिद्ध-हस्त हुआ। उसका 'मुद्राराक्षस' संसार के राजनीतिक नाटकों में बेजोड़ है। उस नाटक में नन्दों के विध्वंसक चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री चाणक्य और नन्दराज के मन्त्री राक्षस का परस्पर कूटनैतिक संघर्ष है। उसकी दूसरी रचना 'देवीचन्द्रगुप्तम्' भी राजनीतिक ही है, पर यह अपूर्ण ही मिली है। इसमें गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने कुमारावस्था में अपने भाई राजाराम गुप्त द्वारा उसकी हारी हुई पत्नी ध्रुवदेवी के वेश में शकराजा को मारकर देवी का उद्धार किया है।

भट्टनारायण का 'वेणीसंहार' महाभारत की उस घटना पर अवलंबित है जिसमें भीम दशासन को मारकर द्रौपदी के अपमान का बदला लेता है। सातवीं सदी के कांची के पल्लवराज महेन्द्रविक्रम का मत्तविलास हास्यरस से भरा सुन्दर प्रहसन है।

संस्कृत गद्य का विस्तार भी कुछ कम नहीं परन्तु न तो वह काव्य की भाँति बहुल ही है न उतना शालीन ही। वैसे तो ब्राह्मण-ग्रन्थों में ही उस गद्य का आरंभ हो गया था पर उसका विपुल विकास प्रायः हज़ार वर्ष बाद हुआ। पहला सुन्दर शालीन संस्कृत गद्य का नमूना शकराज रुद्रदामा के गिरनार के शिलालेख में मिलता है। पर गद्य-काव्य की रचना सातवीं सदी के आरम्भ में शुरू हुई। बाणभट्ट ने अपनी 'कादम्बरी' उसी शैली में नितान्त कल्पना से लिखी। उसका 'हर्षचरित' भी उसी परम्परा का है। दोनों वह अपूर्ण छोड़ गया। दण्डी ने अपना 'दशकुमार चरित' ललित गद्य में लिखा। सुबन्ध ने अपनी 'वासवदत्ता' लिखकर कादम्बरी की ही भाँति एक उपन्यास का सूत्रपात किया।

संस्कृत का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसका संक्षेपतम सिंहावलोकन भी पर्याप्त विस्तार की अपेक्षा करेगा। यहाँ

स्वल्प में उसकी ओर संकेत मात्र किया गया है, वरना उसके चम्पू (गद्य-पद्य सम्मिलित), स्तोत्र, ऐतिहासिक काव्यों और अनन्त खण्ड-काव्यों का कोई अन्त नहीं। फिर उसके विविध वैज्ञानिक विषयों, नीतिपरक रचनाओं, पंचतंत्रादि कथाओं की परिधि असाधारण बड़ी है। यहाँ तो हमें इस संक्षिप्त विवरण से ही संतोष करना होगा।

• • •